८ रुपए

जीवनीय

हेमंत
शिशिर
वर्ष १, अंक ३ - ४

लोक स्वास्थ्य की द्वैमासिक पत्रिका

इस अंक के प्रमुख आकर्षण

दाद पर आदिवासियों के अनुभव

घरेलू मसाले एवं स्वास्थ्य

बच्चों में सूखा रोग

अभ्यंग या मालिश

पोलियो की रोकथाम

क्या हृदय की बीमारी जानलेवा है?

जीवनीय द्वैमासिक

मानद संपादक मंडल (लखनऊ)

वैद्य लक्ष्मीकांत कुलकर्णी
वैद्य सुल्तान अली खां
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
वैद्य पूर्ण चंद्र जैन
डा. मोहन बांडे
डा. पारस नाथ मिश्र
वैद्य राजकिशोर मिश्र
डा. रवि कुमार शर्मा
डा. हरि प्रकाश शर्मा
वैद्य वाचस्पति त्रिवेदी

कार्यकारी संपादक

डा. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

संयोजक

पं. माधवाचार्य

कार्टून

श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव

संपादकीय सहायक

वैद्य उमेश चंद्र शर्मा
श्री रोमेलो मालवीय

साज-सज्जा

श्री अली कौसर

वितरण - विज्ञापन सलाहकार

श्री वामिक रहमान

इस पत्रिका के लिये कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं

संपादकीय कार्यालय

लो.स्वा.प.सं.स.
ई-III/250, सेक्टर एच
अलीगंज, लखनऊ-226 020
फोन - 0522 - 77568

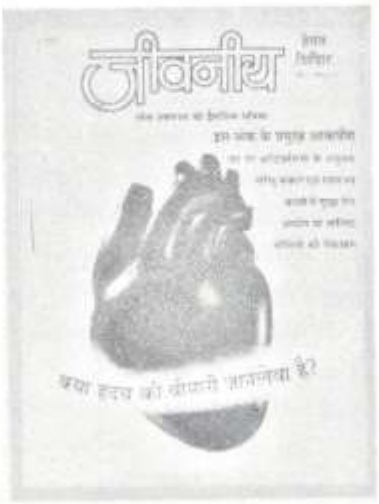

वर्ष १, अक ३-४

१६ नवम्बर, १९९० - १५ मार्च, १९९१

जीवनीय के चंदे की दरें

एक प्रति ५ रु.
वार्षिक २५ रु.
द्विवार्षिक ४५ रु.
त्रैवार्षिक ६५ रु.
(चंदा डाकखर्च सहित है)

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, २५७ गौलागंज, लखनऊ से मुद्रित तथा सी-३/५ रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ से प्रकाशित, संपादक- डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय सलाहकार समिति

सिद्ध वैद्य ब्रह्ममानंद स्वामिगल, कोयंबटूर
हकीम अल्ताफ अहमद आज़मी, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानंद पांडे, नई दिल्ली
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य बृहस्पति देव त्रिगुण, नई दिल्ली
वैद्य भास्कर वि.साठ्ये, नागपुर
श्री गंगाराम जानू आवारी, नासिक
वैद्य शिव कुमार मिश्र, पीलीभीत
वैद्य सुभाष रानाडे, पुणे
डा. उमा, बंगलूर
हकीम सैयद खलीफतुल्लाह, मद्रास
वैद्य (श्रीमती) श.कोपिकर, मुंबई
वैद्य रमेश म.नानल, मुंबई
वैद्य नरेन्द्र सो.भट्ट, मुंबई
हकीम सैफुद्दीन अहमद, मेरठ
वैद्य मायाराम उनियाल, रानीखेत
वैद्य बी.बी. म्हैस्कर, बड़ोदरा
डा. गीता बामेजई, वाराणसी
वैद्य रामहर्ष सिंह, वाराणसी

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति

रजिस्टर्ड कार्यालय

पो.बा. ७१०२ रामनाथ पुरम्
कोयंबतूर-६४१०४५

दक्षिण क्षेत्रीय कार्यालय

द्वारा पी.पी.एस.टी.फाउंडेशन
२९,IV मेन रोड
गांधी नगर, अड्यार
मद्रास - ६०० ०२०

संपादकीय

देसी चिकित्सा पद्धतियों की वर्तमान दुर्दशा के कई कारण हैं जिनमें से कुछ का विवेचन हम इस स्तंभ में कर भी चुके हैं। एक महत्वपूर्ण कारण है इन चिकित्सा पद्धतियों की वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जो अधिकांशतः ऐसे स्नातक उत्पन्न करती है जिन्हें अपनी पद्धति के ज्ञान का न केवल अभाव होता है वरन् उन्हें उस पर विश्वास भी नहीं होता। यह केवल ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली की चमक-दमक और गुणवत्ता से प्रभावित होकर ही नहीं होता कि हमारे देसी चिकित्सा के संस्थागत रूप से शिक्षित अधिकांश स्नातक मरीज़ों को तो अक्सर ऐलोपैथिक दवाएं देते ही रहते हैं, स्वयं अपनी स्वास्थ्य रक्षा के लिए भी उन्हीं दवाओं का सहारा लेते हैं। आज के मशीनी युग में इन अधिकांश देसी चिकित्सकों से ऋतुचर्या और दिनचर्या के परंपरागत सिद्धान्तों के पालन की अपेक्षा करना तो लगभग असंभव ही है।

देसी चिकित्सा पद्धतियों की शिक्षा प्रणाली की वर्तमान दुर्दशा के तीन मूल कारण हैं। जहाँ एक कारण है आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की अंधाधुंध नकल, दूसरा कारण है इनके स्नातकों की सरकारी नौकरी पर अधिकतर निर्भरता के कारण कुछ ऐसे संख्यात्मक मापदंड स्थापित करना जिनके आधार पर डिग्रियों की महत्ता बढ़े, चाहे उनकी गुणवत्ता के कोई भी मापदंड न बन सकें। तीसरा कारण है येन केन प्रकारेण चिकित्सा शास्त्र की डिग्री लेना ताकि आधुनिक ऐलोपैथी का व्यवसाय किया जा सके।

आधुनिक विज्ञान की शिक्षा का स्वरूप संभवतः ऐसा हो सकता है कि वर्तमान शिक्षा संस्थानों के अनुरूप उसके अलग-अलग भाग एक क्रम में पढ़ाए जा सकें और अंत में कुछ समय तक व्यावहारिक अनुभव के लिए "इंटर्नशिप" का प्रबन्ध हो। इसी प्रकार विभिन्न विषयों की स्नातकोत्तर शिक्षा का स्वरूप भी देसी चिकित्सा पद्धतियों में विकसित हुआ। पर इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं कि देसी चिकित्सा में भी इस स्वरूप की आँख बंद करके नकल इसी लिए की जाए ताकि देसी शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक ऐलोपैथी के शिक्षण की व्यवस्था भी हो सके। देसी चिकित्सा पद्धति के साथ ऐलोपैथी के सात्म्य और सामंजस्य पर बिना विचार किए जो शिक्षा पद्धति हमारे शिक्षण संस्थानों में चल रही है वह उनमें व्याप्त हीन भावना के लिए मुख्यतया उत्तरदायी है। यह इसी हीन भावना का द्योतक है कि अधिकांश प्रदेशों में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के ठुकराए छात्रों को देसी चिकित्सा पद्धतियों के पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिया जाता है और वे उसके बाद भी कई वर्षों तक ऐलोपैथी के पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए प्रयास करते हैं।

सरकारी नौकरियों में डिग्रियों के इस स्वरूप की निर्भरता के कारण सरकारी तंत्र से जुड़ा शिक्षा विभाग इस दिशा में कोई भी "असरकारी" कदम उठाना ही नहीं चाहता है। इस परिस्थिति से उबरने के लिए आवश्यक है कि देसी चिकित्सा पद्धतियों के विकास में रुचि लेने वाले सभी सरकारी एवं गैर सरकारी व्यक्ति एवं संस्थाएं एकजुट होकर प्रयास करें ताकि कम से कम आगे आने वाली पीढ़ी उन्हें ये दोष तो न दे सके कि उनके सामने अन्य कोई विकल्प ही न था।

पाठकों के पत्र

प्रिय संपादक जी,

जीवनीय पत्रिका नवम्बर के शरद अंक में विषयक उपयोगी सामग्री का अवलोकन किया, हार्दिक खुशी हुई। आशा करता हूँ कि जीवनीय पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी चिकित्सा का प्रसार एवं प्रचार जनमानस तक पहुँच सकेगा

डॉ. मायाराम उनियाल, रानीखेत

जीवनीय का वर्षा ऋतु अंक पढ़ा जो कि बहुत ही अच्छा लगा। इसके बाद के अंक मैने सोनीपत, दिल्ली की कई किताब और पत्रिका की दुकान पर पता किया किन्तु सफलता नहीं मिली। कृपया सूचित करें कि इसका ग्राहक बनने के लिए क्या शुल्क देना होगा ताकि पत्रिका मुझे सुरक्षित रूप से मिल सके।

अशोक कुमार, सोनीपत

लोक स्वास्थ्य की पत्रिका जीवनीय एक चिकित्सक मित्र के यहाँ देखने को मिली। परन्तु उसे पूरा पढ़ने का अवसर न मिल पाया। कृपया यह पत्रिका मुझे उपलब्ध करायें तथा वार्षिक एवं आजीवन शुल्क भी लिखें। मेरे लिए योग्य सेवा हो तो अवश्य लिखें।

डॉ. पी.के. बत्तरा, गाज़ियाबाद

हमने आपके यहाँ से प्रकाशित पत्रिका का अध्ययन किया। अत्यधिक सर्वोत्तम पत्रिका लगी। दिल्ली में कई बुक स्टालों पर देखा लेकिन पत्रिका प्राप्त न हो सकी। कृपया सूचित करें कि पत्रिका कहाँ मिलेगी तथा नियमित कैसे मंगाई जाए। उसमें एक लोकोक्ति छपी है " ताल मखाना गोखरू..." कृपया यह भी सूचित करें कि उसमें कौन सी दवा कितनी मात्रा में ली जाए।

गुलाब सिंह, शाहदरा, दिल्ली

साधारणतया इस तरह की लोकोक्तियों में औषधियों की सम मात्रा ली जाती है पर रोग विशेष के लिए किसी कुशल वैद्य से संपर्क करना चाहिए।

संपादक

मुझे जीवनीय आयुर्वेद पत्रिका की एक प्रति भेजने की कृपा करें। मेरी शुभकामनाएं इसके साथ हैं।

सरयू प्रसाद मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, उदयपुर

नव वर्ष की बधाई भेज रहा हूँ। आपके संयोजकत्व में जीवनीय पत्रिका मिलती रहती है। मैं पत्रिका प्राप्त करने के लिए दो वर्ष का चंदा भेज रहा हूँ। कृपया पत्रिका नियमित रूप से भिजवाने की व्यवस्था करें।

विश्वनाथ केशव राव, बनारस

दिल्ली से ऋषिकेश रेल में आते हुए किसी महानुभाव से आपकी जीवनीय पत्रिका देखने को मिली पर उसका पूरा अवलोकन भी न कर पाए थे कि वे महानुभाव अगले स्टेशन पर उतर गए। मन को बड़ा दुःख हुआ पर मैने आपका पता अवश्य मन में अंकित कर लिया था। कृपया एक प्रति नमूने के तौर पर भेजने का कष्ट करें तथा नियमित रूप से मंगाने का चंदा व शर्तें लिखें।

बलराज कृष्ण सूद, ऋषिकेश

यद्यपि पत्रिका में छपे लेखों के संपादन का हम पूरा प्रयास करते हैं परन्तु लेख में दिये गये तथ्यों की जिम्मेदारी संपादक की नहीं है।

इस अंक में

हेमंत ऋतुचर्या ४

शिशिर ऋतुचर्या ५

आयुर्वेद का अधिकारी कौन ७

बच्चों में सूखा रोग ८

अभ्यंग ९

हिताहार १२

यूनानी में स्वास्थ्य के सिद्धांत १३

दाद पर आदिवासियों के अनुभव १५

पोलियो की रोकथाम १७

विशेष लेख

क्या हृदय की बीमारी जानलेवा है? २२

औषध द्रव्य

हड़जोड़ २१

अशोक ३१

गेंदा ३४

कुश ३६

अतीस ३७

निशोथ ३८

आहार द्रव्य

संतरा ४६

उड़द की दाल ४७

पालक ४९

काजू ५०

शहद ५१

बंद गोभी ५७

स्थायी स्तंभ

दादी मां के नुस्खे १८

वनौषधि संग्रह ५८

अपने आंगन में ६०

पत्र पत्रिकाओं से ६२

मधु संचय ६३

मस्तराम ६४

हेमंत ऋतुचर्या

वैद्य संगीता जैन, नागपुर

ऋतु व्यतीत हो रही ऋतु के अंतिम तथा आने वाली ऋतु के प्रथम सप्ताह (१५ दिन) को ऋतुसन्धि कहते हैं। इस काल में जाने वाली ऋतु की विधि का त्याग और नवीन ऋतु का आचरण धीरे-धीरे क्रम-पूर्वक अपनाना चाहिए। अन्यथा असात्म्यज रोग हो सकते हैं। इसलिए ऋतुसन्धि में आगामी ऋतु की चर्या का पालन अवश्य ही करना चाहिए।

ऋतुओं का मानव शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। शरीर ही नहीं अपितु मन भी इनसे प्रभावित होता है। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के कुप्रभावों से बचने के लिए ऋतुचर्या का पालन करना चाहिए। विभिन्न ऋतुओं में विहित नियमों के पालन से शरीर को स्वस्थ बनाये रखा जा सकता है। इन नियमों के पालन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप शरीर रोग ग्रस्त नहीं होता।

हेमन्त ऋतु अन्य सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ कही गई है। इसमें सूर्य की गति दक्षिणायन होती है। इस काल में चन्द्रमा बलवान होता है तथा सूर्य का बल कम होता है। इस कारण शरीर पुष्ट व बलवान होता है। इस ऋतु में वनस्पतियों, रस, वीर्य, गुणों से परिपूर्ण होती हैं और जीव-जन्तु आदि प्राणी भी हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इस काल की औषधियाँ अत्यन्त गुणवान होती हैं, फलतः शीघ्र कार्यकारी होती हैं।

हेमन्त ऋतु विसर्गकाल की सर्वश्रेष्ठ ऋतु है क्योंकि वर्षाऋतु में पित्त का संचय तथा वात का प्रकोप होता है और शरद ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है। इस प्रकुपित पित्त का हेमन्त ऋतु में शमन होता है व किसी भी दोष का प्रकोप नहीं होता है। इसलिए इस ऋतु में तीनों

> ऋतुओं का मानव शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। शरीर ही नहीं अपितु मन भी इनसे प्रभावित होता है। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के कुप्रभावों से बचने के लिए ऋतुचर्या का पालन करना चाहिए। विभिन्न ऋतुओं में विहित नियमों के पालन से शरीर को स्वस्थ बनाये रखा जा सकता है। इन नियमों के पालन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप शरीर रोग ग्रस्त नहीं होता।

दोष – वात, पित्त, कफ ये साम्यावस्था में रहते हैं और यही स्वास्थ्य की परिभाषा है। हेमन्त ऋतु स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए सबसे उत्तम ऋतु है। इसके दो प्रमुख कारण हैं – एक तो शरीर की स्वयं को स्वस्थ बनाये रखने की प्राकृतिक प्रक्रिया तथा दूसरे औषधियों का रस, गुण, वीर्य आदि से सम्पन्न होना। इसलिये रसायन सेवन के लिये यह सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। इसलिए इस ऋतु में शरीर के लिए उपयुक्त रसायन का चयन करके, उसके उपयुक्त तरीके से सेवन द्वारा शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना चाहिए। इस ऋतु में रोग-प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि होने से, न केवल इस ऋतु में बल्कि अन्य सभी ऋतुओं में भी शरीर को निरोगी बनाये रखा जा सकता है, यही इस ऋतु की विशेषता है।

हेमन्त ऋतु में वातावरण शीतल रहता है, इस कारण शरीर की पाचकाग्नि बाहर नहीं निकल पाती है, फलतः पाचन शक्ति तेज रहती है। इसलिये भारी व अधिक मात्रा में खाया हुआ भोजन भी आसानी से पच जाता है। इस मौसम में रूखा-सूखा, हल्का एवं कम मात्रा में लिया आहार प्राकृतिक रूप से प्रदीप्त अग्नि के लिए अपर्याप्त होने से अग्नि अन्न के अभाव में धातुओं का ही पचन करने लगती है, जिसके फलस्वरूप क्षयजन्य अनेक रोग हो सकते हैं। इसलिए धातुवर्धक, पौष्टिक, स्निग्ध, विशेषतः मधुर, अम्ल, लवण, रस प्रधान भोजन करना चाहिए। दूध, घी, तेल, मक्खन, सूखे मेवे आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होना चाहिए। नया चावल, उड़द, मूँग, मसूर, चने की दाल और सब्जियों में पालक, मेंथी, लौकी, गोभी, सेम, मटर, सरसों, मूली, गाजर का तथा फलों में सेब, अनार, अमरूद, केला, पपीता आदि का सेवन लाभकारी होता है। खीर, मेवों से बने मिष्ठान, अण्डे, मांस, मछली आदि का सेवन करना चाहिए।

शेष पृष्ठ ६ पर

शिशिर : एक सुखद ऋतु

वैद्य एस.ए.खान, लखनऊ

शिशिर ऋतु में जीव-जन्तु और पेड़-पौधों से सूर्य की किरण रस अर्थात शक्ति का शोषण करती है। इसलिए जीव-जन्तुओं और पेड़ पौधों में इस काल में स्निग्धता और शक्ति की कमी हो जाती है। शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म ऋतुएं आदान-काल के अन्तर्गत आती हैं। शिशिर ऋतु सामान्तया १६ जनवरी से १५ मार्च तक रहती है।

भारतवर्ष में हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुओं में ठण्डक अधिक पड़ती है। वात और कफ की वृद्धि रहती है। जरा सी भी असावधानी बरतने पर वात और कफ का प्रकोप होने का भय रहता है। हेमन्त और शिशिर दोनों ही ऋतुएं स्वास्थ्य के लिए उत्तम मानी गई हैं। परन्तु शिशिर की अपेक्षा हेमन्त ऋतु अधिक उत्तम है। क्योंकि इस ऋतु में वायुमण्डल में मधुर रस की स्वाभाविक रूप से उत्पत्ति होती है और मधुर रस कफ व शक्तिवर्द्धक है। जबकि शिशिर ऋतु में वातावरण में तिक्त रस की उत्पत्ति होती है। इससे शरीर में रूक्षता और वायु की वृद्धि अधिक होती है।

जाड़े के मौसम में इन दोनों ऋतुओं में शीत के कारण त्वचा के रोम-कूपों के सिकुड़ जाने से शरीर की उष्मा त्वचा द्वारा बाहर कम निकल पाती है। शीत के कारण पसीना भी कम निकलता है अतः शरीर से उष्मा का ह्रास और भी कम होता है। इसी कारण जठराग्नि (भूख) तीव्र हो जाती है। पाचन शक्ति बढ़ जाती है। ठण्ड के प्रभाव से बचने के लिए लोग वात कफ शामक (पित्त वर्धक) अर्थात उष्ण वीर्य पदार्थों का सेवन अधिक स्वाभाविक रुप से करते हैं जिनमें - अण्डा, गोश्त, चाय, कॉफी आदि प्रमुख हैं।

> हेमन्त और शिशिर दोनों ही ऋतुएं स्वास्थ्य के लिए उत्तम मानी गई हैं। परन्तु शिशिर की अपेक्षा हेमन्त ऋतु अधिक उत्तम है। क्योंकि इस ऋतु में वायुमण्डल में मधुर रस की स्वाभाविक रूप से उत्पत्ति होती है और मधुर रस कफ व शक्तिवर्द्धक है। जबकि शिशिर ऋतु में वातावरण में तिक्त रस की उत्पत्ति होती है। इससे शरीर में रूक्षता और वायु की वृद्धि अधिक होती है।

इस ऋतु में वात कफ शामक उपक्रम करना चाहिए। काल प्रभाव से इस ऋतु में कफ का संचय और वृद्धि होती है। वात और पित्त प्रकृति वालों को पौष्टिक, चिकनाई वाले और शक्ति-दायक भोजन का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु कफज प्रकृति वालों को अधिक पौष्टिक और चिकनाई वाले पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे वात कफ शामक पदार्थ जैसे - सोंठ, अदरक, कालीमिर्च, हींग, इलायची, जीरा, अजवायन, मेथी, असगन्ध, लहसुन, तुलसी, सौंफ आदि का भी प्रयोग इस ऋतु में वात और कफ के प्रभाव को कम करने के लिए करना चाहिए। गेहूँ के आटे की बनी खूब फूली हुई रोटियाँ भी वात कफ शामक होती हैं।

शिशिर ऋतु में खाद्य पदार्थ जैसे - मक्का, ज्वार, बाजरा तथा सीवा, कोदों, मसूर व मूँग की दालें आदि का लगातार प्रयोग नहीं करना चाहिए। वातवर्धक पत्तों वाले साग का अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु बथुआ (त्रिदोष शामक), मेथी और सोये का साग (वात कफ शामक) ले सकते हैं। ये साग होते हुए भी वात को नहीं बढ़ाते है। अधिक समय तक भूखे नहीं रहना चाहिए। पित्तज प्रकृति वालों को विशेष रूप से भूखे नहीं रहना चाहिए तथा उन्हें अधिक मसालों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। नहीं तो उन्हें अम्ल पित्त जैसे रोग हो सकते हैं।

इस ऋतु में वात कफज रोग जैसे - निमोनिया, फ्लू, खाँसी, जोड़ों में दर्द, दमा, सिरदर्द आदि हो जाते हैं। वात प्रकृति के लोगों में वात व्याधियाँ हो सकती हैं और यदि पहले से हैं तो उभर सकती है।

यदि हम ऋतु के अनुसार रहन-सहन, खान-पान रखते हैं तो ऋतुओं के अनुसार जो दोषों की वृद्धि और प्रकोप होता है उसका प्रभाव स्वास्थ्य पर नहीं पड़ता। ग्रीष्म ऋतु में वात पित्त की वृद्धि और संचय होता है।

शरद ऋतु में वात का शमन और पित्त का प्रकोप होता है। हेमन्त ऋतु में पित्त का शमन ओर कफ की वृद्धि होती है। शिशिर में कफ का संचय होता है। शक्ति के अनुरूप वात की वृद्धि होती है। वसन्त ऋतु में कफ का प्रकोप होता है। वात भी किसी हद तक बढ़ता है।

नई ऋतु शुरू होने पर दो सप्ताह तक धीरे-धीरे पुरानी (बीती) ऋतु का आहार छोड़ना और नई ऋतु के आहार का प्रयोग करना चाहिए। इस ऋतु में पाचकाग्नि (आहार पचन शक्ति) के तीव्र होने से चिकनाई और गरिष्ठ भोज्य प्रदार्थ भी आसानी से पच जाते हैं।

शिशिर ऋतु का जितना समय बीतता जाता है उतनी ही कफ वृद्धि होती जाती है। वर्षा ऋतु में वात का प्रकोप काल प्रभाव से होता है ओर स्थाई होता है। परन्तु शिशिर में वात की वृद्धि और प्रकोप अस्थाई होता है जो ठण्ड के अनुपात में बढ़ता है। अतः शरीर को गर्म वस्त्रों से ठीक प्रकार से न ढकने से बढ़ता है। अतः इस ऋतु में सिर, सीना, तलवे आदि को ठीक प्रकार से ढक कर रखना चाहिए जिससे कि वात व कफ का प्रकोप न हो पाए और शरीर का रोगों से बचाव हो सके।

इस ऋतु में रातें लम्बी होती हैं अतः प्रातः उठ कर शीघ्र नाश्ता करना चाहिए। यह समय स्वास्थ्य बनाने का है। अतः पौष्टिक आहार उचित मात्रा में खाकर स्वास्थ्य बनाना चाहिए। व्यायाम और स्त्री संसर्ग भी इस ऋतु में मना नहीं है। बल्कि कफज प्रकृति के लोगों को इन दोनों कर्मों से परहेज करने के निर्देश नहीं हैं।

इस ऋतु में निम्न का सेवन विशेष रुप से करना चाहिए : मधुर, अम्ल और नमकीन रस वाले पदार्थों का सेवन, धूप का सेवन, शरीरिक श्रम करना, गेहूँ, उत्तम प्रकार के चावलों का प्रयोग करना, उड़द, मांस, मछली, पिट्ठी के बने पदार्थ, नये अन्नों का प्रयोग करें, क्योंकि यह भारी और कफ कारक होने के कारण बलवर्धक होते हैं। तिल, गुड़, केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, स्निग्ध पदार्थ, जैसे : घी, सूखे मेवे, वसा, मज्जा, आदि। प्रातः और सायँकाल आग तापना, उष्ण जल से स्नान, मोटे कपड़ों का सेवन, तिल या सरसों के तेल से धूप में मालिश करना चाहिए। इससे वात और कफ दोनों का शमन होता है तथा त्वचा का रूखापन कम होता है। त्वचा के रोमों में छिपा मैल तेल में घुलकर ऊपर आ जाता है और उष्ण जल से स्नान करने और तौलिये से पोंछने पर यह मैल त्वचा से अलग हो जाता है।

पृष्ठ ४ का शेष

हेमन्त ऋतुचर्या

उचित मात्रा में मद्यपान भी इस ऋतु में लाभकारी होता है। वाह्य वातावरण ठंडा होने से वात, कफ सम्बन्धी रोग होने की सम्भावना होती है। इसलिए रूखा-सूखा, ठंडा, कड़वा, तीखा, हल्का आहार न लें। बर्फ, शीतल पेय, शर्बत, आईसक्रीम आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

ऋतुचर्या में ऋतु के अनुसार आहार के साथ-साथ विहार का भी अत्यन्त महत्व है। सर्द हवाओं का भली-भाँति प्रतिकार करना चाहिए। शरीर को ऊनी वस्त्रों से ढँकना चाहिए, घर को गर्म बनाये रखने के उपाय करना चाहिए। विशेष रूप से बच्चों में इस बात का अधिक ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि शीतल वायु उनमें शीघ्र ही कफ का प्रकोप कर रोगोत्पत्र कर सकती है। इस ऋतु में अभ्यंग अर्थात तेल-मालिश बहुत ही लाभकारी होता है। सरसों, जैतून या किसी अन्य तेल से मालिश करने के पश्चात स्वेदन (भाप से सिकाई) करना चाहिए। इसके लिए धूप-स्नान, भाप ये उपाय उचित हैं। हल्दी, सरसों, बेसन इनका उबटन कर फिर गुनगुने जल से स्नान करना चाहिए। इस ऋतु में वायु शीतल व रूक्ष होने से वात का प्रकोप होने से त्वचा फटने लगती है। लेकिन उपरोक्त उपायों के करने से त्वचा स्निग्ध व कान्तियुक्त बनी रहती है। उचित मात्रा में व्यायाम भी करना चाहिए, इससे शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहता है और शरीर में अतिरिक्त चर्बी जमा नहीं हो पाती है।

हेमन्त ऋतु में वायु शीतल व रूक्ष होने से वात, कफ सम्बन्धी रोग होने की सम्भावना होती है। आमवात, सन्धिवात, दमा, खाँसी, बुखार इत्यादि रोग होने की आशंका बढ़ जाती है। आमवात, सन्धिवात, दमा जैसे रोग पहले से हों तो इस काल में शीतल वायु के संस्पर्श से अधिक वेदनादायक हो जाते हैं। बालकों में न्यूमोनिया, सर्दी, बुखार आदि रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है। इसलिए इन रोगों से बचने के लिए उचित आहार-विहार का पालन करना चाहिए।

आयुर्वेद का अधिकारी कौन

वैद्य एम.नीलकंठन् नम्बूदिरिप्पाद, कोयम्बटूर

भारतीय विज्ञानों के अध्ययन में "अधिकारी" (योग्य पात्र अथवा शिक्षार्थी) का महत्व सर्वोपरि है। जब तक व्यक्ति जिज्ञासु ऐसी मनःस्थिति को प्राप्त नहीं कर लेता, जिसमें शास्त्रों में निहित सूक्ष्म सत्यों को वह ग्रहण कर सके, तब तक उसे उस विद्या का अधिकारी नहीं माना जा सकता। गुरुकुल परंपरा में प्रत्येक छात्र को उसकी क्षमता के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक विषय को उसे इतने विस्तार से सिखाया जाता है कि छात्र उस विषय का मर्मज्ञ हो जाए। विद्याध्ययन की अवधि छात्र की ग्रहणशीलता के अनुसार घटती-बढ़ती है।

किसी भी विषय का गंभीर अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व "प्रकरण ग्रंथों" (आधारभूत ग्रंथों) का सम्यक् अध्ययन आवश्यक है। आयुर्वेद को समझने के लिए तर्कशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। "अनधिकारी" को कोई विद्या नहीं दी जाती क्योंकि "अनधिकारी" छात्र विद्या के मूलतत्व को ग्रहण कर ही नहीं सकता। उसे विद्या देने पर भी उसका बोध विकृत ही रहेगा।

आजकल आयुर्वेद के छात्रों को "अधिकारी" बनाने की परंपरा नहीं है। इसीलिए आज के आयुर्वेदज्ञों में भ्रम और मतभेद बहुत ब ढ़ गये हैं। विषय का अध्यापन उचित क्रमानुसार नहीं कराया जाता। आयुर्वेद के समुचित बोध के लिए आयुर्वेद के साथ-साथ छात्रों को सांख्य दर्शन भी पढ़ाया जाना चाहिए। इससे न केवल वह आयुर्वेद को ही समझ सकेगा, बल्कि इससे उसकी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और वह संपूर्ण भारतीय प्रज्ञा को समझ सकेगा।

यदि जिज्ञासु "स्पष्ट बोध" के साथ आयुर्वेद का अध्ययन करे तो वह अष्टांगहृदय के प्रथम पन्द्रह अध्यायों का अध्ययन करके रोगियों की चिकित्सा आरंभ कर सकता है। शेष आयुर्वेद शास्त्र धीरे-धीरे अपने आप उसको स्पष्ट हो जायगा।

आजकल आयुर्वेद के छात्रों को "अधिकारी" बनाने की परंपरा नहीं है। इसीलिए आज के आयुर्वेदज्ञों में भ्रम और मतभेद बहुत बढ़ गये हैं।

आयुर्वेद के जिज्ञासुओं को मालूम होना चाहिए कि आयुर्वेद का पाठ्यक्रम पूरा कर लेने से ही कोई आयुर्वेद का मर्मज्ञ नहीं हो जाता। आयुर्वेद के अनुसार समस्त रोगों के मूल में बुद्धिवैकल्प होता है। यदि बुद्धि स्थिर और शांत है, उसमें कोई अवांछित गतिविधि नहीं है तो शांति और सामंजस्य की स्थिति रहेगी। अष्टांगहृदय के प्रारंभिक श्लोकों में "रागादिरोगान्" से यह स्पष्ट होता है। इसमें भावनाओं को रोग का बीजकारण बतलाया गया है। जब तक व्यक्ति आत्मसंयम नहीं करेगा, इंद्रिय सुखों में लिप्त रहेगा, वह भावनाओं के वश में रहकर रोगों के प्रति ग्रहणशील बना रहेगा।

आयुर्वेद के यथार्थ बोध से ही आयुर्वेद विज्ञान का उचित प्रयोग संभव है और यह यथार्थ बोध गुरु कृपा से ही संभव है और गुरु कृपा से विद्या प्राप्त करने का उपाय यह है कि तत्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्नों द्वारा उस ज्ञान को प्राप्त करना क्योंकि वे मर्मज्ञ ज्ञानीजन ही उस ज्ञान का उपदेश देते हैं।

कामला पर राष्ट्रीय गोष्ठी स्थगित

कामला पर जिस राष्ट्रीय गोष्ठी को लोस्वापसंस के तत्वाधान में लखनऊ की युवा वैज्ञानिक अकादमी १५-१७ मार्च १९९१ को आयोजित कर रही थी, उसे भारत सरकार के निर्देशों के अनुसार कुछ समय के लिए स्थगित किया गया है, यद्यपि गोष्ठी की तैयारियाँ काफी कुछ हो चुकी थीं। हमें आशा है कि इस स्थगन के कारण गोष्ठी के भागीदार निराश नहीं होंगे वरन् अपनी तैयारी और अच्छी तरह से कर सकेंगे। गोष्ठी की अगली तारीखें हम शीघ्र ही सूचित करेंगे।

बच्चों में सूखा रोग

वैद्य वि.भा. म्हैसकर, पुणे

सूखा रोग में बालक का शरीर दिन प्रति-दिन सूखता जाता है। आयुर्वेदीय शास्त्रीय परिभाषा में इसे "शोष रोग" तथा बच्चों में होने से बालशोष कहते हैं।

यह रोग दिन में अधिक सोने से, ठंडे पानी का अधिक उपयोग करने से अथवा स्तन-पान करने वाले बच्चों में माँ का दूध कफ दोष से दुषित होने से, दूध एवं अन्न ऐसे दोनों में कफ कारक पदार्थ अधिक होना, जैसे दही, मीठा उचित पोषक पदार्थ न लेने से होता है।

शरीर में इन कारणों से कफ दोष खूब बढ़ जाता है व जाम होता है। ऐसे जाम कफ से रसवह स्रोतसों का अवरोध होकर शरीर का पोषण ठीक से नहीं होता है। जिससे शरीर पतला और कमजोर हो जाता है और सूखने भी लगता है।

बालशोष के कारण शरीर को सुखाने वाले कारणों में गरीब वर्ग में अन्न की कमी होना, माता का दूध निकृष्ट प्रतीक होना, बालकों को दिया जाने वाला ऊपर का दूध और अन्न की पोषण क्षमता की कमी होना, कृमि, अतिसार, मृदुभक्षण (मिट्टी खाना), ज्वर ऐसे अन्य रोगों से पीड़ित होने पर तथा इनका उपचार ठीक से न होने पर शरीर सूखना शुरू हो जाता है। उपद्रव रूप होने पर भी यह रोग गम्भीर हो सकता है।

लक्षण

मुँह और आँखें चमकीली एवं सफेद दिखायी देती हैं। अन्न में बच्चे की रुचि नही रहती है। सर्दी, बुखार, खाँसी इत्यादि लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर दुबला होता जाता है। पोषण ठीक न होने पर शरीर में रस व रक्त की कमी होती है। परिणाम- स्वरूप मुँह, हाथ, पाँव की त्वचा पर झुर्रियाँ दिखाई देती हैं। शरीर में मांस और मेद की कमी हो जाती है। हाथ, पाँव शुष्क हो जाते हैं तथा इनकी तुलना में पेट, सिर मोटे होने लगते हैं। बच्चा

दिन प्रतिदिन सूखता जाता है। वजन कम हो जाता है। कमजोरी इतनी आती है कि वह खेल-कूद बन्द करके केवल सोते रहना, लेटे रहना ही पसंद करता है। इन लक्षणों को देखकर यह प्रतीत होता है कि बच्चों में राजयक्ष्मा या शोष रोग ही है।

परीक्षण में मंद से मध्य वेगी ज्वर (१०० डिग्री फॉ. से १०२ डिग्री फॉ. का तापमान), नाड़ी वेगवती होना, फुफ्फुस में वात-कफ ध्वनि सुनाई देना, समय-समय पर भार घटते जाना, पृष्ठ भाग और छाती के बाजू का भाग नरम लगना, ऐसे लक्षण मिलते हैं। बलगम का परीक्षण आवश्यक हो तो करा लेना चाहिए। छाती की संपूर्ण जाँच उपयोगी होती है। रक्त परीक्षण द्वारा रक्त की दशा समझ लेना भी उचित होता है।

विभेदक निदान

शरीर में कृशता या सूखे के समान दशा पैदा करने वाले रोग जैसे ग्रहणी रोग, कृमि, अतिसार, मिट्टी खाने की इच्छा, कुक्कुर खाँसी से उत्पन्न कमजोरी और फक्क रोग का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

उपद्रव - मुँह पर या पूरे शरीर पर सूजन आना, रक्त की कमी (एनीमिया), अतिसार (दस्त), मुखपाक (मुँह में छाले) इत्यादि।

साध्यासाध्यता – "सूखा रोग" का बालकों में सहज उपचार नहीं है। प्रयत्न पूर्वक योग्य औषधि प्रयोग करने के पश्चात लाभ जरूर होता है।

चिकित्सा

स्रोतों के अवरोध को दूर करना चिकित्सा का प्रधान सूत्र है। रोगी (बालक) अत्यन्त दुर्बल होते हैं। धातु क्षय खूब होता है। बाल्यावस्था भी शोधन उपचारों के लिए अनुकूल वय नहीं होती है। इसीलिए वमन-विरेचन जैसे शोधन उपचार नहीं कर सकते।

शेष पृष्ठ १० पर

स्वास्थ्य रक्षक मालिश

वैद्य गोविन्द प्रसाद उपाध्याय, नागपुर

न केवल आयुर्वेद शास्त्र अपितु भारतीय जनमानस भी अभ्यंग या मालिश को महान स्वास्थ्य रक्षक, एवं स्वास्थ्य सम्वर्द्धक क्रिया मानता है। अभ्यंग शरीर के पोषण तथा रक्षण में अत्यन्त सहयोगी है। भारतीय परिवारों में नन्हें बच्चों की सरसों के तेल से मालिश पर बहुत जोर दिया जाता है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु विश्व भर में किसी न किसी रूप में अभ्यंग का प्रयोग किया जाता है। आजकल बड़े-बड़े शहरों में, फाइव स्टार होटलों में चल रहे "मसाज सेन्टर" और उनका आकर्षण मालिश की सर्वकालिक, व्यापक उपयोगिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। वस्तुतः अभ्यंग का पूरा लाभ उपयुक्त तेल, उपयुक्त विधि, उपयुक्त समय आदि पर निर्भर करता है।

हल्के हाथों से विशेषतःग्रीवा के द्वारा शरीर पर किसी तेल को रगड़ना अभ्यंग या मालिश कहलाता है। आयुर्वेद शास्त्र में सारे शरीर पर रोज अभ्यंग करने का निर्देश है, खासकर सिर, कान, नाभि, हाथों, पैरों के तलवों में मालिश करना चाहिए। नियम पूर्वक अभ्यंग करने से शरीर में बुढ़ापे के लक्षण जल्दी नहीं आते, थकावट दूर होती है तथा वायु की वृद्धि नहीं होती, आँखों की दृष्टि ठीक रहती है। वाग्भट्ट के मतानुसार मालिश नित्य करनी चाहिए इससे थकान और बुढ़ापा दूर होता है। हमारे शरीर की अनेक महत्वपूर्ण क्रियायें रक्त परिभ्रमण पर आश्रित हैं। मालिश करने से रक्त परिभ्रमण की क्रिया बढ़ती है और सारी धातुओं को पोषण मिलता है। फलतः शरीर पुष्ट होता है, चेहरे पर चमक रहती है, चमड़ी में झुर्रियाँ नहीं पड़तीं। जीवन यापन के लिए हमें विभिन्न प्रकार के परिश्रम के कार्य करने पड़ते हैं जिससे शरीर में थकावट आती है, वायु की वृद्धि होती है। अभ्यंग करने से थकावट दूर होती है तथा वायु की वृद्धि नहीं होती। दैनिक कार्यों के फलस्वरूप हमारी त्वचा से रूक्ष, खर, शीत, उष्ण, क्षोभक, जलन कारक संस्पर्शों का संयोग होता है। धूल और गन्दगी जमती है। दिन में एक बार ठीक से की गयी मालिश त्वचा की इन सबसे रक्षा करती है। हेमन्त ऋतु में ठंडी हवायें चलती हैं जिनके कारण वाह्य रक्त कोशिकायें सिकुड़ जाती हैं और चमड़ी को कम खून मिल पाता है, इसलिए चमड़ी रूखी हो जाती है तथा जगह-जगह से फटने लगती है। किसी उष्ण तेल से मालिश करने पर त्वचा का रक्त परिभ्रमण बढ़ जाता है और चमड़ी पर तेल की परत बन जाती है जिससे सर्दी का प्रभाव नहीं पड़ता। चमड़ी न तो रूखी होती है और न ही फटती है। इस प्रकार अन्य ऋतुओं की अपेक्षा हेमन्त ऋतु में अभ्यंग अधिक आवश्यक है।

मालिश करने के पूर्व ध्यान देना चाहिए कि कोई उपसर्ग युक्त (इन्फैक्टिव), स्रावी त्वचा रोग तो नहीं है क्योंकि हाथ की रगड़ से उसके अन्य स्थानों पर फैलने की सम्भावना रहती है। शरीर के जिस स्थान पर अभ्यंग करना है पहले उसे ठीक से साफ कर लें। गुनगुनेपानी से धोना या गीले कपड़े से अच्छी तरह रगड़ कर साफ करना भी उचित होता है। मालिश के लिए सबसे उपयुक्त स्नेह तेल होता है। संस्कृत की एक कहावत है कि घी से तेल दस गुना लाभकारी है, खाने से नहीं मर्दन करने से। सामान्यतः उष्ण वीर्य पदार्थों (गरम तासीर) का तेल उष्ण तथा शीतवीर्य पदार्थों का तेल शीत होता है। उष्ण या शीत द्रव्यों को तेल में डाल कर पकाने से भी तेल की प्रकृति उष्ण या शीत हो जाती है। आवश्यकता के अनुसार तेल का चयन करना चाहिए। सिर, नेत्र, हृदय प्रांत, अण्डकोषों में गरम तेल की मालिश नहीं करनी चाहिए। मालिश सदैव रोओं की गति की दिशा में करनी चाहिए तथा प्रारम्भ में धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए फिर तीव्र गति से रगड़ना उपयुक्त होता है। जहाँ उत्तेजना देना हो वहाँ अंगुलियों के अग्रभाग से कमान के साथ दबाव डालते हुए मालिश करें। दैनिक अभ्यंग हथेली के पिछले मांसल हिस्से से करना ज्यादा उचित है। स्वस्थ अंगों की मालिश २ से ५ मिनट समय तक करना पर्याप्त है। प्रातः स्नान के पूर्व अभ्यंग कर थोड़ी देर सूर्य की तरफ पीठ कर धूप लेना सर्वोत्तम है। ऋतु, मानव प्रकृति, दोष प्रकोप, उद्देश्य के अनुसार अभ्यंग का समय भिन्न-भिन्न हो सकता है। दिन में एक बार तो अभ्यंग करना ही चाहिए। किन्तु जरूरत होने पर दिन में २-३ बार भी मालिश की जा सकती है। वैसे एक या दो दिन छोड़कर, सप्ताह में दो बार या एक बार भी अभ्यंग किया जा सकता है। शीत काल में अभ्यंग हेतु तेल को पहले हल्का गरम कर लेना

चाहिए। मांसल प्रांतों, पीठ, नितम्ब, शाखाओं में जोर डाल कर तथा सिर, मुख, छाती व पेट में हल्के हाथों से मालिश करना चाहिए। अभ्यंग के बाद उबटन लगाकर या शरीर को खूब घिस कर स्नान करना चाहिए फिर किसी मोटे कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिए।

वेदना जैसे सामान्य लक्षणों में तेल के साथ मेंथी, लहसुन, हींग, अण्डे की ज़र्दी, धतूरा व एरण्ड पका कर अभ्यंग करने से लाभ होता है। उष्ण कार्यों हेतु सरसों का तेल, समशीतोष्ण कार्य के लिए तिलों का तेल तथा शीत कार्य के लिए एरण्ड या नारियल के तेल में तदनुकूल औषधि सिद्ध कर प्रयोग करना चाहिए। नीचे दी गयी तालिका में रोगों के लक्षण के अनुसार ही तेल का प्रयोग लाभकारी होता है :

व्याधि लक्षण	प्रयोज्य तेल
वेदना	महानारायण, दशमूल
शोष	सामिष, महामाष, बला
दुर्बलता	महामाष, श्रीगोपाल
संधि शूल (जोड़ का दर्द)	प्रसारिणि, पंचगुण
दाह	चन्दन, बला, लाक्षादि, मधुयष्टि
त्वग् रोग	निम्ब तेल, चालमौंगरा
श्यावता	रक्तचन्दन तेल, कुंकुमादि
शून्यता	– मरिच्यादि, सर्षयादि
शोथ	– सैन्धवादि, धतूरा
शिरःशूल	– ब्राह्मी आँवला, हिमसागर।

पृष्ठ ८ का शेष

सूखा रोग

कंटकारी, अश्वगन्धा, तुलसी और पिप्पली इनसे सिद्ध घृत का प्रयोग प्रारंभ में करें इससे स्रोत खुल जाते हैं, भूख बढ़ती है और पाचन शक्ति में भी परिवर्तन देखा जाता है। **यष्टिमधु, पिप्पली, लोध्र, कमल, चंदन, तापीरुपम और अनंतमूल** सिद्ध घृत का प्रयोग बताते हैं। दोनों प्रयोग अनुभूत एवं लाभकारक हैं शमन और बृंहण के लिए।

दूसरे योगों में वसंतकल्प सबसे अच्छी है। गरीब लोग भी दे सकें ऐसा कल्प लघुमालिनी वसंत है। इस प्रकार ५० से २०० मिग्रा. मात्रा दिन में दो बार लेना चाहिए। अनुपान मक्खन एवं शक्कर अथवा घी और मिश्री के साथ लें। यदि आर्थिक दशा ठीक हो और व्यवस्था हो सके तो सुवर्ण वसंतमालिनी, मधुमालिनी वसंत भी अधिक फायदा पहुँचा सकते हैं। अग्निदीपन, स्रोतःशोधन, रुचिकारक ऐसे कल्पों में द्राक्षासव, कुमारी आसव, विडंगारिष्ट, अरविंदासव इनका समावेश दोष एवं अन्य लक्षण देखकर करना चाहिए। ये उत्तम स्रोतःशोधी होते हैं। मात्रा १ से ३ चम्मच। थोड़ा अग्निदीपन होने पर शतावरी, अश्वगन्धा इनसे सिद्ध दूध भी दिन में एक या दो बार दे सकते हैं। अमृतारिष्ट और अश्वगन्धारिष्ट भी अनुक्रम से ज्वर एवं अत्यन्त दुर्बलता की स्थिति में लाभप्रद होते हैं।

कूष्मांड या पेठा भी अत्यन्त उपयोगी बल्य औषधि है। कूष्मांड पाक बल्य पौष्टिक के रूप में देते हैं। अतिसार, मुखपाक आदि इन लक्षणों से युक्त और अत्यन्त दुबले केवल अस्थिपंजर स्थिति को प्राप्त ऐसे रोगी के लिये नाडिहिंगु निर्यास का उत्तम उपयोग होता है। नाडिहिंगु को डिकेमापी या डिकामारी भी कहते हैं। निर्यास को भूनकर लेना चाहिए। भली प्रकार घिसकर १०० से २०० मिग्रा. मात्रा में देना चाहिए। अल्प मात्रा में भी बहुगुणी ऐसा यह कल्प है। दूध ही पीने वाले बच्चों में अधिक उपयोगी होता है। बाह्य उपचारों में चंदन, बला लाक्षादि तेल अथवा केवल तिल के तेल से मालिश करना उपयोगी होता है। स्नान गुनगुने पानी से कराना चाहिए।

आहार में बकरी का दूध तथा गाय का दूध यथालाभ देता है। अतिसार हो तब सोंठ सिद्ध दूध, केवल अग्निदीपन के लिए विडंग साधित दूध, ऐसे दूध से निर्मित दही, छाछ का उपयोग कर सकते हैं। नरम चावल, मूँग की दाल, खिचड़ी, घी, दूध, गेहूँ की रोटी, देनी चाहिए। मांसाहारी हो तो मांसरस, यकृत का यूष, कुक्कुरांड इनका उपयोग अग्नि का बल और पचन देखकर थोड़े प्रमाण में करना चाहिए। पिप्पली सिद्ध दूध, वर्धमान पिप्पली प्रयोग, च्यवनप्राश, अश्विनीप्राश, (पेठा एवं आमलकी प्रधान) इनका भी उपयोग पुष्टि के लिए होता है।

रोकथाम

शोष रोग संक्रामक है। बालशोष इसका अपवाद नहीं है। अन्य कुटुंब के सदस्यों से बच्चों को अलग रखना चाहिए। आधुनिक वैद्यकानुसार उपलब्ध प्रतिबंधक टीके का लाभ लेना चाहिए। बाल्यावस्था में होने वाले कास (खाँसी), अतिसार, कृमि, पांडु इत्यादि रोग शोष की पूर्व भूमिका पैदा करते हैं।

अतः ऐसे रोगों की चिकित्सा समय पर और यथायोग्य स्वास्थ्य लक्षण प्राप्त हो तब तक करनी चाहिए। खान-पान-व्यवहार इत्यादि में स्वच्छता के सामान्य नियमों का विशेष ध्यान से पालन करना चाहिए।

शब्दकोष

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

अपक्व : जो पूरी तरह पका न हो।

आन्त्र कृमि : पेट की आँतों में होने वाले कीड़े।

आम विकार : आहार का पचन न होने से होने वाला रोग।

आशुगुणकारी : तत्काल लाभ देने वाला।

कवोष्ण : गुनगुना।

कूर्च : ब्रश।

कृमिघ्न : वे द्रव्य जो कृमि का नाश करते हों।

खर : जो मृदु (मुलायम) न हों। वात का गुण।

गुल्म : गाँठ। रक्त दोष से उत्पन्न विकार।

छार्दि : वमन, उल्टी।

पिच्छिज : गाढ़ा लसलसा पदार्थ।

पार्ष्णि : पैर के नीचे का पिछला हिस्सा, एड़ी।

मूत्राश्मरी : मूत्र के मार्ग में होने वाली पथरी।

रक्त संवहन : खून का संचार।

रक्ताल्पता : शरीर में खून की कमी (एनीमिया)।

लघु पाकी : आसानी से पचने वाला, हल्का।

विद्रधि : रक्त दोष से शरीर के किसी भाग पर सूजन आना। जिससे अत्यधिक पीड़ा व जलन होती है।

विबन्ध : पेट में मल या वायु का रुकना, न निकलना।

विसर्प : शरीर पर लाल चकत्ते या सूजन।

शिरोविरेचन : सिर में अटके हुए कफ को निकालने हेतु उपाय। नस्य।

श्यावता : वात रक्त दोष से उत्पन्न स्थान विशेष का काला पड़ना।

शोथ : सूजन।

संग्राहक : स्तंभक। रोकने वाला।

विरेचनिक : ऐसे पदार्थ जो पेट साफ करके गुदा मार्ग से मल बाहर निकालने में सहायक हों।

स्रावी : बहने वाला।

स्फुरित : फटा हुआ।

क्षोभक : क्षोभ (संताप) उत्पन्न करने वाला।

कुक्कुरखाँसी और ऊँट

वैद्य र.म. नानल, बंबई

कुक्कुरखाँसी एक अत्यन्त कष्टदायक रोग है। बच्चे की हालत देखते नहीं बनती और प्रत्येक व्यक्ति का बताया हुआ उपाय भी करके देखा जाता है। अहमदाबाद के परिसर में कुक्कुरखाँसी के रोगी बच्चे को ऊँट की गुदा सुंघाते हैं। कहते हैं कि इससे लाभ होता है। मेरे बड़े भाई श्री विलास नानल स्वयं बताते हैं कि बचपन में जब उन्हें कुक्कुरखाँसी हो गयी थी तो मेरे पिता वैद्य म.पु. नानल ने उक्त उपाय किया था। उनका कहना है कि वे इससे ठीक हो गये थे। (आगे ऊँट का क्या हुआ यह उन्हें नहीं मालूम) अनुसंधानकर्ता इस पर अपने विचारों से हमें अवगत करायें।

(मधुजीवन विशेषांक 15 अगस्त 1990 से साभार)

हिताहार

डॉ. सत्य प्रकाश त्रिपाठी, मेरठ

आहार प्रीणनः सद्यो
बलकृत् देह धारकः
आयुस्तेजः समुत्साह विवर्द्धनः।

अर्थात आहार शरीर को धारण करने वाला, तृप्तिकारक, तत्काल शक्ति देने वाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और जठराग्नि को बढ़ाने वाला है।

आहार ही प्राण रक्षा का साधन है। इसी से संसार के प्राणी जीवित रहते हैं। जल और वायु के बाद जगत का नाश होने से बचाने वाला पदार्थ आहार ही है। जन सामान्य विशेषकर रोगियों को आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन न करने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं। रोगी को अपनी प्रकृति के अनुकूल लघुपाकी आहार करना चाहिए। ऐसे पदार्थों का सेवन किया जाए जिन्हें शरीर की अग्नि शीघ्र पचा दे। गरिष्ठ आहार देर से पचता है। अतः प्रत्येक रोगी को चाहिए कि अपनी रसना को वशीभूत करे और शीघ्र पचने वाले आहार से शरीर का पोषण करे।

रोगी का आहार हितकारी होना चाहिए। ऐसी खाद्य वस्तुओं का सेवन करना चाहिए जिससे उन्हें यथेष्ट लाभ हो। प्रकृति से जो पदार्थ हितकारी होते हैं वह कभी अनिष्ट नही करते, परन्तु प्रकृति से अहितकारी पदार्थों से सदैव बचते रहना चाहिए। इस तरह आहार द्रव्यों का विभाजन दो भागों में स्वतः ही हो जाता है।

१. हितकारी पदार्थ, २. अहितकारी पदार्थ।

हितकारी पदार्थ

आरोग्य जनक पदार्थों को प्रकृति हितकारी पदार्थ कहते हैं। इसके अन्तर्गत साठी, शालि–चावल, जव, गेहूँ, मूँग, परवल, बथुआ, मीठे फल, सैंधव लवण, गोदुग्ध, घृत तथा मिश्री आदि पदार्थ आते हैं। इन पदार्थों से मनुष्यों का कभी अनिष्ट नहीं हो सकता, परन्तु रोगावस्था में यही प्रकृति हितकारी पदार्थ भी दुःखदायी हो जाते हैं। अतएव चिकित्सक द्वारा निर्धारित आहार का ही रोगावस्था में सेवन करना चाहिए।

दुग्ध अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है, परन्तु कफ वाले रोगी को हानिकर है। शालि–चावल उपयोगी खाद्यान्न है, लेकिन वातव्याधि में इसका सेवन विष का काम करता है। अतः रोगियों को उनकी प्रकृति के अनुसार जो उपयोगी पदार्थ हों वही देना चाहिए। जिन पदार्थों के द्वारा रोगी का रोग नष्ट हो, शरीर में बल–वीर्य की वृद्धि हो, पराक्रम तथा जठराग्नि बढ़े, ऐसे हितकारी पदार्थों का उपयोग करना चाहिए।

साधारण मधुर रस वाले फल रोगियों के लिए अमृत तुल्य हैं, परन्तु रोगी को स्वाद के लिए विशेष मीठे फलों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, अन्यथा उन्हें लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ेगी क्योंकि विशेष मीठे फलों के सेवन से ज्वर, प्रमेह, श्वास, मेद और अग्निमांद्य जैसे भयंकर रोगों के प्रकट होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

रोगी को रोग नष्ट करने वाले आहारों का अनुयायी होना चाहिए। जैसे किसी को अर्श या यकृत का रोग है, उसे ऐसा आहार करना चाहिए जिसमें उस रोग के नाश करने की शक्ति हो, जैसे सूरण, पपीता आदि। रोगी के लिए ऐसे ही पदार्थ हितकारी हैं और हितकारी पदार्थों से ही कष्ट की निवृत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

अहितकारी पदार्थ

आहार में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो प्रकृति से ही हानिकारक हैं। ऐसे पदार्थ मनुष्य की प्रकृति को विकृत कर नानाविध रोगों का सृजन कर देते हैं। जैसे– अनाजों में– उड़द, ऋतुओं में ग्रीष्म, तेलों में कुसुम का तेल, दुग्धों में भेड़ का दूध, लवणों में खारी नमक, मिठाइयों में राब, फलों में बड़हर का फल प्रकृति से ही अहितकर हैं। ये मनुष्यों को स्वाभाविक हानि देते हैं।

संयोग विरुद्ध पदार्थ

दो ऐसे पदार्थ, जिन्हें मिलाकर नहीं लेना चाहिए। जैसे

दूध और मूली	दूध– केला
दूध– नींबू	दूध– नमक
दूध– तिल	दूध– तेल
दूध– उड़द की पिट्ठी	
दूध– मछली, मांस	
दही और गर्म पदार्थ	दही और बड़हर
दही और केला	शहद– गर्म जल
शहद– गर्म पदार्थ	शहद– मूली
शहद– मछली	दूध– सत्तू

शेष पृष्ठ १४ पर

यूनानी चिकित्सा में स्वास्थ्य के सिद्धान्त

हकीम अलताफ अहमद आज़मी, दिल्ली

स्वास्थ्य रक्षा का तात्पर्य बीमार होने पर चिकित्सक का परामर्श लेना मात्र नहीं है अपितु इससे अधिक स्वयं को किसी रोग से पीड़ित होने से बचाना है तथा स्वस्थ शरीर की रक्षा करना भी है। स्वास्थ्य रक्षा का यूनानी चिकित्सा पद्धति में एक विशेष स्थान है। इसके अनुसार छः आवश्यक कारक हैं जो कि मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होते हैं। व्यक्ति तब तक निरोग रहता है जब तक यह छः कारक शरीर में अपनी प्रकृति और सन्तुलन बनाये रखते हैं।

सब कारकों का विस्तार से वर्णन करना सम्भव नहीं है इसलिए प्राथमिक और महत्वपूर्ण कारक जैसे- व्यायाम, आहार और निंद्रा जो कि मनुष्य के जीवन यापन के अंग बन गये हैं। उन्हें यहाँ बताया जा रहा है।

व्यायाम

इसके द्वारा स्वैच्छिक शारीरिक क्रियाएँ कार्य करके रक्त प्रवाह को बढ़ा कर शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं को सामान्य रखती हैं और शरीर को शक्तिशाली बनाती हैं।

प्राचीन यूनानी चिकित्सक, विशेषकर इब्ने रशद और इब्ने सिना ने लम्बी अवधि के कैदियों की दशा पर अध्ययन किया और यह पाया कि पर्याप्त व्यायाम न होने के कारण उनके चेहरे पीले और शरीर के अंग शिथिल थे। इसके अतिरिक्त इन चिकित्सकों ने यह भी बताया कि किसी विरेचक (दस्तावर) औषधि का प्रयोग करके शरीर के व्यर्थ तत्वों को निकालने से आवश्यक द्रव्य उपयोगी और शक्ति त्रिदोषज भी शरीर से निकल जाती हे। इसके विपरीत व्यायाम करने से शरीर में निहित ऊर्जा बढ़ती है। इसके साथ पाचन शक्ति तथा विभिन्न ग्रन्थियों और अंगों की कार्य क्षमता में तेज़ी आ जाती है। ज्यादातर लोगों का विश्वास यह है कि किसी भी प्रकार का कोई व्यायाम शरीर के लिए लाभकारी होता है व कोई भी व्यक्ति इसको कर सकता है। ऐसा सोचना गलत है। शारीरिक शक्ति जैसी हो उसी के अनुरूप व्यायाम करना चाहिए। इसके साथ-साथ उम्र के अनुसार भी विभिन्न व्यायाम लाभकारी होते हैं।

आजकल बढ़ते हुए हृदय रोग और उससे पीड़ित व्यक्ति सामान्य और सन्तुलित आहार व व्यायाम की कमी दर्शाते हैं। इसके साथ रक्त प्रवाह में भी रुकावट आने की सम्भावना बढ़ जाती है

आहार

इसकी मुख्य भूमिका शरीर को रोगग्रस्त न होने देने में और स्वस्थ मनुष्य को हृदय रोग, कैंसर, मुँह की बीमारी, पाण्डु, मधुमेह और अस्थि रोगों आदि से बचाने में है। अनुचित और असन्तुलित खान-पान ही व्यक्ति के आकस्मिक और जल्दी मर जाने का कारण होता है जैसा कि यूरोप में किए गये एक परीक्षण से पता चलता है। इसके अनुसार आधे से अधिक स्त्री-पुरुष जिनकी आयु ६५ वर्ष से कम थी, उनकी मृत्यु का कारण असंतुलित आहार ही था।

आहार में किस प्रकार के खाद्य-पदार्थ सम्मिलित होने चाहिए इस विषय में अनपढ़ और पढ़े-लिखे सभी व्यक्तियों को भ्रम हो सकता है, इन लोगों का विचार है कि जिस आहार में चर्बी, नमक, चीनी, और शरीर को ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ अधिक हों और रेशेदार खाद्य पदार्थ कम हों वह सन्तुलित आहार होता है।

आहार यदि अधिक प्रोटीन युक्त है या बहुत ऊर्जा प्रदान करने वाला और विटामिन रहित है तो यह दोनों प्रकार, सन्तुलित आहार के सिद्धान्तों के विपरीत जाते हैं। यूनानी चिकित्सा पद्धति, कैलोरीज़ को उतना ही महत्वपूर्ण बताती है जितना कि शरीर की आन्तरिक दशा, जलवायु, स्थान और आयु को। उसके आधार पर कुछ सिद्धान्तों का ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे-

- सही खुराक
- मौसम (जाड़े में गर्म और गर्मी में ठण्डा या थोड़ा गर्म खाना)
- उचित मात्रा में खाना
- उचित क्रम में खाना
- देश और जन्म-स्थान
- शरीर का वज़न
- सामान्य आन्तरिक दशा
- भोजन बनाने का तरीका
- दोषों का सन्तुलन
- कितनी बार खाएँ

- किसी विशेष भोजन पर रुझान
- दो भोजन के बीच समय अन्तर
- मिष्ठान
- आयु
- विश्राम, निंद्रा, शारीरिक क्रिया भोजन से पहले और बाद में।

निंद्रा

निंद्रा और मानसिक शान्ति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। बहुत लम्बी अवधि तक न सोना दिमाग को कमजोर करता है और इसके अतिरिक्त शरीर में निहित शरीरिक ताकत को भी नष्ट करता है। कम सोने वाला व्यक्ति संक्रामित और विकृत रोगों से पीड़ित हो जाता है। इसलिए मनुष्य को सही समय पर सोना और सही समय पर प्रातःकाल उठ जाना आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक सोना भी हानिकारक है। इसलिए इस विषय में मध्यस्थ मार्ग अपनाना ही उचित होगा। रात्रि में जागने से उचित प्रकार से भोजन नहीं पच पाता। जो लोग रात्रि में काम करते हैं उनकी आयु धीरे–धीरे कम होती जाती है।

इस प्रकार यूनानी चिकित्सा कुछ आवश्यक नियमों का पालन करते हुए व्यक्ति को रोगों से बचाने में और उसे एक स्वस्थ मनुष्य के रूप में ज्यादा महत्व देती है।

पृष्ठ १२ का शेष

हिताहार

अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को संयोग विरुद्ध पदार्थ एक साथ कदापि नहीं सेवन करना चाहिए। इन्हें मिलाकर अथवा एक साथ सेवन करना स्वास्थ्य के लिए बड़ा ही हानिकारक है।

कर्म विरुद्ध पदार्थ

कर्म विरुद्ध आहार शरीर में रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे– शहद को उष्ण करके अथवा ग्रीष्म ऋतु में शहद का अधिक उपयोग कर्म विरुद्ध होने से हानिकारक है। पीतल के पात्र में रखे हुए आम्ल पदार्थों का सेवन करना कर्म विरुद्ध है। काँसे के पात्र में कुछ दिन रखे हुए घृत का उपयोग करना महा अनिष्ट कारक है। आरोग्यता रक्षार्थ इनसे बचना चाहिए।

अत्यन्त गर्म भोजन हानिकारक है, और शीतल हो जाने पर भी वह दोषयुक्त हो जाता है। शीतल आहार को पुनः गर्म करके सेवन करना कर्म विरुद्ध कहलाता है। प्रायः घरों में बासी बचे पूड़ी, पराठे गर्म करके सेवन किये जाते हैं, यह उचित नहीं है। ये पच कर भी उत्तम आहार रस नहीं बनाते तथा ज्वर, अतिसार आदि रोगों के उपादान कारक बनते हैं। अतः कर्म विरुद्ध पदार्थों से बचे रहना ही उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य है।

माप (तौल) विरुद्ध पदार्थ

परस्पर विरुद्ध गुण वाले द्रव्यों को एक साथ समान मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। इससे रोग और दुःख का प्रादुर्भाव होता है।

शहद और घी समान मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। यद्यपि १–२ दिन में इससे विशेष अनिष्ट नहीं होता है, परन्तु कुछ काल तक सेवन करने पर भयंकर अनिष्ट होते देखा गया है। इसी तरह – शहद, जल, घी, और वसा समान मात्रा में मत सेवन करें। तेल और वसा, घी और तेल समान मात्रा में ग्रहण करना वर्जनीय है। अर्थात् शहद के साथ स्नेहन द्रव्यों एवं जल का सेवन तथा स्नेहन द्रव्यों के साथ जल का सेवन नहीं करना चाहिए।

गाय का घी– प्राणवत्ता का संरक्षक

वैद्य के. शशिधरन, कोयंबटूर

गाय का घी मात्र वसा नहीं है, अपितु इसमें शरीर की जीवंतता को बनाये रखने की शक्ति मौजूद है। बुढ़ापे में शरीर संरचना के चिकने पदार्थों की कमी से शरीर के तत्वों के ह्रास की प्रक्रिया दिन पर दिन तीव्र होती जाती है। इस चिकनेपन और पित्त की सामान्य सघनता को बनाये रखने में गाय के घी का बड़ा महत्व है। शरद् ऋतु में विशेष रुप से आंवले के स्वरस से सिद्ध किया गया गाय का घी लेना चाहिए। सेवन का समय रात में सोने से पूर्व और मात्रा दो चम्मच है। इससे शरद् ऋतु में दूषित पित्त शांत होता है। गाय का घी दीर्घायु बुद्धि और बल के लिए हितकारी है। यह बुद्धिशक्ति और जठराग्नि को प्रदीप्त करता और रंगत निखारता है। यह आंखों की शक्ति और शरीर में पुनर्जनन की प्रक्रिया को बढ़ाता है। आंख, कान और योनि की बीमारियों तथा अपस्मार में इसका उपयोग सफल रहता है।

सुभाषित

व्यायाम – स्विन्न – गात्रस्य
पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव।।

जो व्यक्ति कसरत द्वारा शरीर को तर कर लेता है और उसे पैरों से भली–भाँति दबवा लेता है उसके पास रोग ऐसे नहीं आते जैसे सिंह के पास छोटे – छोटे मृग नहीं फटकते।

दाद पर आदिवासियों के प्रयोग

डॉ. एस.राधिका अय्यर, जयपुर

दाद मनुष्यों और पशुओं में कवक (फंगस) द्वारा उत्पन्न होने वाला रोग है। कवक के आक्रमण और शरीर में उस की स्थापना के बाद प्रभावित भाग पर वृत्ताकार घेरा बन जाता है, जिसके कारण अंग्रेज़ी में इसे रिंगवर्म कहते हैं। एक आंकलन के अनुसार संसार के २०% लोग जीवन में कभी न कभी इस रोग के शिकार हो ही जाते हैं। उष्ण कटिबंधीय देशों में यह रोग विशेष रूप से फैलता है। चरकसंहिता में दद्रु कुष्ठ नाम से इसका वर्णन है।

आठ वर्ष से कम आयु के बच्चे इस रोग के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं और उन्हें सिर पर यह रोग होता है, जिससे उनके बाल झड़ जाते हैं। प्रभावित भाग पर गोल चकते पड़ जाते हैं, जिनसे खून निकलता है। रोग की तीव्र अवस्था में तेज दर्द और खुजली होती है। रोग का संक्रमण इस रोग से पीड़ित पशुओं और मनुष्यों के सम्पर्क से होता है। धूल-मिट्टी से भी संक्रमण हो सकता है।

रोकथाम के उपाय

रुग्ण व्यक्तियों के सम्पर्क से बचना, दूसरों के वस्त्र, विशेष रूप से जांघिया, बनियान जैसे अंदरूनी वस्त्र न पहनना, तंग कपड़े व जूते न पहनना, चोट और घाव पर धूल न बैठने देना, फुटपाथ पर बैठने वाले नाइयों से हजामत न बनवाना तथा सफाई से रहना रोग की रोकथाम के मुख्य उपाय हैं।

आदिवासियों के औषध

दाद पर आदिवासी लोग बीसियों बूटियों का प्रयोग करते पाये गये हैं। इनमें से कुछ के वर्णन यहाँ प्रस्तुत हैं –

सत्यानाशी : मूलतः यह पौधा मेक्सिको का निवासी है। इसे अंग्रेजी में मैक्सिकन प्रिक्ली पौपी, हिन्दी में कटेली, सत्यानाशी और संस्कृत में स्वर्णक्षीरी कहते हैं।

राजस्थान के भील दाद पर सत्यानाशी की ताजा पत्तियाँ रगड़ते हैं। आंध्र प्रदेश के आदिवासी पत्तियों का रस अकेले अथवा समभाग नमक के साथ प्रयोग करते हैं।

मध्य प्रदेश के रायगढ़ और सरगुजा के गोंड, मुंडा, ओरांव और पहाड़ी लोग तिल के तेल में सत्यानाशी के बीजों का चूर्ण मिलाकर प्रभावित अंग पर लगाते हैं। उत्तर प्रदेश में बांदा जिले के कोल, गोंड, लोध और गूजर भी यही प्रयोग करते हैं। बस्तर (म.प्र.) के आदिवासी महुए के तेल में बीजों का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करते हैं।

पँवाड : इसे संस्कृत में चक्रमर्द, हिन्दी में चकवड या पँवाड, अंग्रेज़ी में सिकल सेना कहते हैं। गोंड लोग इसे चरोहा, झारु लोग चरक्ड और गारो लोग ददरेट कहते हैं।

कुमाऊँतराई के भोटिया चक्रमर्द के बीजों के चूर्ण में नींबू का रस मिलाकर दाद पर लेप करते हैं। गुड्डमपट्टु (आंध्र प्रदेश) के आदिवासी इसकी जड़ को नींबू के रस में पीसकर लगाते हैं। मेघालय के गारो लोग बीज और पत्तियों को एक साथ पीसकर लेप करते हैं। इस पौधे का प्रयोग ओरांव, मुंडा, और गोंड भी करते हैं।

बस्तर के आदिवासियों की मान्यता है कि इसकी कोमल पत्तियों के नियमित सेवन से चर्मरोगों के होने की आशंका नहीं रहती।

नारियल : इसे संस्कृत में नारिकेल और अंग्रेज़ी में कोकोनट कहते हैं। यह केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु के समुद्रतटीय क्षेत्रों की उपज है।

पके हुए खोल को जलाकर प्राप्त राख में नींबू का रस मिलाकर प्रभावित अंग पर लेप करते हैं। आदिवासियों के अतिरिक्त जनसाधारण भी यह प्रयोग करते हैं।

लाल दुद्धी : इसका लैटिन नाम *यूफोर्बिया हिर्टा* है। संस्कृत में इसे दुग्धिका कहते हैं। आदिवासी भी इसे दूधली कहते हैं।

यह एक बित्ता या इससे अधिक ऊँची और लोमयुक्त वनस्पति है। पत्ते आमने-सामने, क्षुद्रवृंतयुक्त, नोकीले-भालाकार, आधा-पौना इंच लम्बे एवं लगभग आधा इंच चौड़े होते हैं।

भील, दमोर और गरासिया आदिवासी संपूर्ण पौधे को पीसकर अथवा पत्तों का रस निकाल कर प्रभावित भाग पर लगाते हैं।

बिछुआ : इसे बिच्छू और काला बिछुआ भी कहते हैं। लैटिन नाम मार्टीनिया ऐनुआ है। अंग्रेज़ी में डेविल्स क्ला और टाइगर क्ला कहते हैं। आदिवासी इसे बिच्छू आंकडी कहते हैं।

वर्षाकाल में यह भारत के उजाड़ स्थानों तथा कूड़ा-करकट के ढेरों पर उगा हुआ देखा जाता है। इसके बीज काले, कठोर तथा रूपरेखा में बिछू के समान होते हैं। इसके पिछले या अगले भाग पर तीन तीखे एवं टेढ़े काँटे लगे होते हैं जिनके सिरे नीचे को मुड़े होते हैं।

शेष पृष्ठ १९ पर

अग्निकर्म से कदर चिकित्सा

एक प्रयोगात्मक अध्ययन

वैद्य भानु प्रताप साहू एवं वैद्य एम.एस.खान – भिलाई

कदर पाँव में होने वाली गाँठ है। इससे पीड़ित व्यक्ति नंगे पाँव चलने में असमर्थ होता है व अधिक दर्द के कारण पाँव सीधा नहीं रख पाता व लंगड़ा कर या कभी झुककर चलता है। इससे वातनाड़ी संस्थान के रोग होने का भय रहता है। इसे संस्कृत में कदर, हिन्दी में गोखरू, व अंग्रेज़ी में कॉर्न कहते हैं।

कंकड़, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े, जूते आदि से पाँव के पीड़ित होने, बार-बार दबाव पड़ने एवं लोहे या धातु के टुकड़े, काँटे, लकड़ी आदि से पाँव में चोट लगने के कारण ये गाँठें उत्पन्न होती हैं।

नव्यमतानुसार : पाँव के सीमित क्षेत्र में बार-बार दबाव पड़ने से शंकु (कील) के समान कोषिकाएँ बनने से कॉर्न होता है। कॉर्न होने का कारण क्षतिग्रस्त कोषिकाओं और कोलेस्ट्राल को माना जाता है।

कार्न दो प्रकार के होते हैं: (१) हार्ड कॉर्न, (२) सॉफ्ट कॉर्न। वात पित्त, कफ दोष कुपित होकर मेद रक्त के साथ मिलकर कील (शंकु) के समान एवं कठोर, बेर के आकार में (करीब ३ मि.मी. से १०-१५ मि.मी. व्यास) प्रायः गोलाकार ग्रन्थि को उत्पन्न करते हैं। यह पाँव के तले, उन्नत भाग एवं मध्य में होने वाली एक कष्टदायक गांठ है।

लक्षण : अल्प वेदनायुक्त, गाँठदार, अधः त्वचा के नीचे जहाँ अस्थि प्रक्षेप है, नाड़ी में गांठे उत्पन्न होती हैं। और इसमें ठोकर या चोट लगने से असहनीय पीड़ा होती है।

प्रस्तुत लेख में एक वर्ष की अवधि में ५० रोगियों पर अध्ययन के बाद यह देखा गया कि अधिकतर रोगी जो पूर्व में शल्य चिकित्सा (सर्जरी), कॉर्न शमन विधि का प्रयोग कर चुके हैं, उन लोगों में पुनः रोग उत्पन्न हो जाता है। हमारे अध्ययन में अधिकांश कदर से पीड़ित वर्ग प्रौढ़ व्यक्तियों (२१ से ५० वर्ष) का है जिनमें यह सबसे अधिक (७२% में) पाया गया। हमारे अध्ययन में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में कदर रोग की संख्या अधिक थी। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि दोनों पाँव में होनें वाले कदर रोगी अधिक एवं बाएँ पैर में यह सबसे कम व्यक्तियों में पाया गया। शलाकास्थि के उन्नत भाग में सबसे अधिक ४०% और अंत पार्श्व में २५% सबसे कम कदर होता है।

उपचार : अग्निकर्म के उपचार के लिए विशेष प्रकार की चिकित्सा आवश्यक हो जाती है। इसके लिए निम्नलिखित की आवश्यकता होती है – (१) पंच धातु शलाका, (२) अवसूचक रूई, (३) पट्टी, (४) कैंची, (५) संदेश, (६) ब्लो लैम्प या स्टोव, (७) घृतकुमारी स्वरस, (८) त्रिफला क्वाथ, (९) हरिद्रा (हल्दी) चूर्ण आदि।

इसके लिए सर्वप्रथम रोगग्रस्त स्थान को त्रिफला क्वाथ से साफ करके, रक्त तप्त (लाल होने तक) गर्म किए शलाका से ग्रन्थि के उन्नत भाग के बीच में ठीक से जलाकर व्रण का निर्माण करना है। ग्रन्थि की परिधि का दग्ध व्रण के चारों ओर पुनः बिन्दुवत सम्यक दग्धव्रण का निर्माण किया गया। तत्पश्चात यह क्रिया सभी ग्रन्थि स्थानों पर की जाती है। घृतकुमारी स्वरस का लेप कर पट्टी बांधी। एक दिन या १२ घण्टे बाद पट्टी खोलकर दग्धव्रण पर हल्दी का चूर्ण दिन में २ या ३ बार लगाया जाना चाहिए।

उपचार का परिणाम : इस प्रकार के उपचार से रोगी रोग मुक्त हो जाता है और ग्रन्थि के स्थान पर पुनः उद्भव नहीं देखा गया है। परन्तु इस प्रकार का उपचार करते समय कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है।

सावधानी : इस प्रकार का उपचार करते समय कुछ सावधानियां रखी जाती है जैसे कि चोट न लगने दें, रोग एवं रोगी के बलानुसार अग्निकर्म सप्ताह में १ या २ बार करें।

इस प्रकार से यह कहना उचित होगा कि अग्निकर्म से क्रमशः वेदना का शमन, दोष एवं धातु का पाक होना प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि तप्त शलाका द्वारा ली गयी अग्नि रोग स्थान पर स्थानान्तरित होती है जिससे रोग आकृत धातु के भेद एवं रक्त धातु के धात्वाग्नि को प्रदीप्त करती है। प्रदीप्त धात्वाग्नि से क्षयज कोषाणु का ह्रास होकर अच्छी, नई कोषिकाएँ बनती हैं। इस क्रिया की पुनरावृत्ति से रोगोत्पाद कोषाणु का नाश होकर नवीन (सजीव) कोषाणु बनने लगते हैं।

वात का अनुलोमन, पाँवों में लघुता, वेदना शमन से रोगी के आत्मबल वृद्धि, मन में उत्साह आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

पोलियो की रोकथाम

वैद्य पी.यादैय्या, अकोला

हमारे भारतवर्ष में पोलियो की बीमारी १९५१ से पहले बहुत कम थी। इस सम्बन्ध में डॉ. ए.वी. बलिगा ने पोलियो पर फिलाडेल्फिया में दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के बाद कहा था कि हम भारतीयों में यह बीमारी तुलनात्मक रूप से कम पाई जाती है।

आयुर्वेद के चिकित्सकों ने नवजात शिशुओं को स्वस्थ रखने और खतरनाक बीमारियों से बचाने के लिए कुछ सावधानियाँ बताई हैं। इनमें से कुछ सावधानियाँ इस प्रकार हैं –

– शहद, घी और उसमें सोने की भस्म (या घिसकर) मिलाकर नवजात शिशु को जन्म के बाद पहले दिन दो–तीन बार देना चाहिए। आयुर्वेद के अनुसार घी और शहद समान मात्रा में मिलाकर खाने से ज़हर बन जाता है। उन चिकित्सकों को इस तथ्य का ज्ञान था कि नवजात शिशु को पहले दिन यह पदार्थ दिया जाएगा तो उसके शरीर में संक्रामक रोग से अपने को बचाने की क्षमता आ जाएगी। सोने की भस्म शिशु को सहन करने की शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करेगी।

– शिशु को वर्षा ऋतु में ठण्ड से बचाना चाहिए क्योंकि इससे वात दोष के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। ठण्ड के कारण वात व्याधि हो सकती है।

– वर्षा ऋतु में शिशु को इस प्रकार के कपड़े पहनाने चाहिए जिससे कि उसका शरीर गर्म रहे।

– शिशु के दो वर्ष की आयु का होने तक तिल के तेल का फाहा सामने माथे पर रोज़ रखना चाहिए। इससे शिशु के मस्तिष्क को पोषण मिलता है और यह स्नायविक तन्त्र का रोग शामक होता है। सिर पर तेल लगाने से सब ज्ञानेंद्रियों का पोषण भी होता है।

– तिल के तेल की या सरसों के तेल की एक–एक बूँद दोनों कानों में प्रतिदिन डालनी चाहिए। क्योंकि कान ही वात दोष का स्थान है और तेल के प्रयोग से यह उत्तेजक का काम नहीं कर पाते हैं।

– तिल के तेल की मालिश पूरे शरीर पर प्रतिदिन स्नान से पहले करनी चाहिए। इस प्रकार की मालिश से उम्र बढ़ती है, वात दोष में कमी आती है और शरीर के ऊतक मज़बूत होते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य जल्दी थकान नहीं महसूस करता है और अच्छी नींद आने से त्वचा के रूप–रंग में परिवर्तन आ जाता है।

– तिल के तेल की मालिश के बाद स्नान से पूर्व साबुन की बजाय हल्दी और बेसन का लेप लगाना उचित होता है। यह चेहरे का रंग निखारता है और त्वचा को रोगों से बचाता है।

– गूगल का धुआँ एक वर्ष तक प्रतिदिन करने से वातावरण के सब विषैले कीटाणु मर जाते हैं और नये जीवाणु पैदा नहीं हो पाते हैं।

– जीवाणु को खत्म करने के लिए शिशु के कपड़ों को भी अच्छी तरह धोने के बाद गूगल का धुआँ देना चाहिए।

– वर्षा ऋतु में शिशु को ज्वर कम करने के लिए किसी प्रकार की मांस पेशी के अन्दर सुई नहीं देनी चाहिए।

– उबला हुआ पानी पाचन को ठीक रखने के लिए देना चाहिए।

– कब्ज़ न होने देना चाहिए। इसके लिए सावधानियाँ रखनी चाहिएं।

– शिशु में किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

– कम से कम ६ मास तक शिशु को माँ का दूध ही देना चाहिए। अगर यह दूध पर्याप्त मात्रा में न हो तो गाय का दूध देना उचित होगा।

यदि उपरोक्त सावधानियों का नियम पूर्वक पालन किया जाये तो पोलियो ही नहीं वरन् अन्य बीमारियां भी शिशु को नहीं होती हैं तथा वह स्वस्थ एवं बलवान होता है।

दादी माँ के नुस्खे

वैद्य बदलू राम रसिक, लखनऊ

सरस्वती – दादी माँ! चरण स्पर्श

दादी माँ – प्रसन्न रहो बेटी! आज सवेरे-सवेरे कैसे आ गई हो, क्या कोई विशेष बात है, और बोतल क्यों लाई हो?

सरस्वती – दादी माँ, सवेरे आने का कारण यह है कि हमारी मौसी कल आँगन में फिसल कर गिर गई थीं, पैर के पंजे, गाँठ तथा कूल्हे में चोट आ गई है। मेरी माता जी ने उन्हें उठाकर पहले १ चम्मच पिसी फिटकरी फँका दी और थोड़ा पानी ऊपर से पिला दिया, फिर गरम-गरम दूध १ गिलास पिला दिया और खाट पर लिटा दिया। हल्दी की गाँठ सिल पर थोड़े पानी के साथ पीसकर उसी में २ चम्मच गीला चूना मिला कर कटोरी में गरम करके हल्का गुनगुना पैर के पंजे और गाँठ में लगा दिया और ऊपर से कपड़े की पट्टी बाँध दी। दिन भर तो थोड़ा आराम रहा मगर शाम को दर्द बढ़ गया, रात को और बढ़ गया, सवेरे उठने पर पैर तो ठीक था ही उससे चलने की कोशिश करती रहीं मगर बायें पैर का पंजा और एड़ी तथा ऊपर की गाँठ सूजी होने के कारण बायें पैर को ज़मीन पर रख ही नहीं पा रही हैं। बड़ा दर्द होता है किसी तरह मौसा जी ने उन्हें पकड़ कर चलाया मगर दर्द से बेहाल हैं तो माता जी ने आप के पास दवा के लिए भेजा है। कहा है कि दादी माँ से कहना कि तीन साल पहले मुन्नी सीढ़ी पर से गिर गई थी उसके शरीर भर में चोट आई थी तो दादी माँ ने जो दवाई बताई थी वही बता दें। उससे बड़ा लाभ हुआ था फिटकरी भी बताई थी वह पिलाई गई है अतः आप चोट को दूर करने की दवा बता दें तथा तेल बनाने की दवा व बनाने की विधि भी बता दें।

दादी माँ – अच्छा लिखो बेटी, आमा हल्दी २० ग्राम, चैनसुर २० ग्राम, मैदा लकड़ी २० ग्राम, चोट सज्जी २ ग्राम सबको कूट पीसकर तैयार कर लें, इसके बाद हड़जोड़ ताज़ी ५० ग्राम, चूना गीला २० ग्राम एक साथ सिलपर पानी से पीस लें। इसी में पिसा हुआ बाकी चूर्ण मिला दें और थोड़ा पानी डाल कर हड़जोड़ के साथ पीस लें। इसे एक कटोरी में रख लें। इसमें २५ ग्राम सरसों का तेल डालकर मिला दें और आग पर पका लें। बस लेप तैयार हो गया, इस लेप को कपड़े पर लगाकर पीड़ा के स्थान पर चिपका दें और ऊपर से कपड़े की पट्टी बाँध दें। २४ घण्टे बाद पट्टी खोलकर उस स्थान को गरम पानी से धो दें और आधा घण्टे बाद पुनः लेप को गरम करके विधिवत बाँध दें। इससे ५ दिन में चोट, मोच, सूजन दूर हो जायगी अगर थोड़ा सा दर्द हो तो ४-५ दिन और बाँध दें दर्द ठीक हो जायगा।

सरस्वती – दादी माँ, सब दवा तो पंसारी की दुकान से मँगा लेंगे मगर ताज़ी हड़जोड़ कहाँ मिलेगी, और क्या यह पक्का लाभ करती है?

दादी माँ – हड़जोड़ की बेल होती है, हमारे यहाँ पिछवाड़े बगिया में पूरी दीवार पर चढ़ी है चलो हम तुम्हें दिखाती हैं और तोड़कर भी देंगी, इसे अपने घर में पिछवाड़े, आँगन में कहीं भी ज़मीन में गाड़ देना थोड़ा पानी डाल देना, लग जाने के बाद फिर हमेशा लगी रहेगी। सदा हरी रहती है कभी सूखती नहीं है। यह इतनी लाभकारी औषधि है कि इसके जितने गुण बताये जायें थोड़े हैं। शहर के लोग अपने यहाँ गमले में लगा कर रखते हैं। हमारे यहाँ से सैकड़ों आदमी रोज़ ही माँग कर ले जाते हैं। हड़जोड़ का तेल भी हम बनाती हैं जिसे लोग हमसे १० रु. की शीशी ले जाकर लगाते हैं। यह तेल हड्डी के चिटख जाने से होने वाले दर्द को दूर करता है सूजन मिटाता है और चोट लगने के स्थान पर मांस सूखने लगता है उसमें भी यह बड़ा फायदा करता है।

सरस्वती – दादी माँ, आपने हड़जोड़ और उसके तेल के बड़े लाभ बताये हैं अब तेल बनाने की विधि भी बतायें।

दादी माँ – लिखो बेटी, हड़जोड़ १ किलो, आमा हल्दी १०० ग्राम, मैदा लकड़ी १००, सेंधा नमक १०० ग्राम। हड़जोड़ को गीली कूट कर रख लें, तीनों चीजों को कूट लें और हड़जोड़ के साथ मिलाकर ६ लीटर पानी में आग पर धीमी आँच में चढ़ा दें इसी में तिल का तेल १ लीटर डाल दें। यह सब १५ लीटर पानी समाने वाले भगोने में पकायें जिससे पकाते समय उबल कर बाहर न निकल सके, पकते

समय बीच-बीच में करछुल से चलाते रहें जिससे यह पेंदे में लग न पाये। दो घण्टे में तेल पक जायगा। उतार कर ठण्डा होने पर छान कर बोतल में भर कर रख दें। छनी हुई लुगदी को १ डिब्बे में भरकर रख दें बस तेल तैयार है। यह तेल मलने के काम आता है और लुगदी की पोटली बनाकर गरम तवे पर रखकर पोटली गरम करके दर्द के स्थान पर या चोट की सूजन के स्थान पर सिकाई करने से पूरा लाभ होता है। हाँ और सुनो, जिन लोगों के सर में चक्कर, गर्दन घुमाने में दर्द तथा रीढ़ में दर्द होता है उनको इस तेल की मालिश करने से बड़ा लाभ होता है, ऐसे रोगी को हड़जोड़ की एक गाँठ के महीन-महीन टुकड़े करके बेसन में मिलाकर सरसों के तेल में पकौड़ी तलकर १ सप्ताह खाने से बड़ा लाभ होता है। चलो अब तुम्हें हड़जोड़ की बेल भी दें दें। इसे ले जाकर ज़मीन में लगा देना और बढ़ जाने पर लोगों को बाँटना। सब कुछ लिख भी लिया है।

सरस्वती – हाँ दादी माँ, सब लिख लिया है अब चलिए हड़जोड़ दिखाइये।

दादी माँ मकान के पीछे जाकर सरस्वती को हड़जोड़ की बेल ४-५ हाथ तोड़कर दे देती हैं। हड़जोड़ की लता गाँठदार होती है। ३-४ इंच लम्बी १/४ से १/२ इंच तक मोटी, चौकोर हरी गाँठें होती हैं। इसकी हर गाँठ की बगल से १ पत्ता निकलता है जो नुकीला, गोल २ इंच के करीब हरा होता है। इसे शहर में लोग गमलों तथा ज़मीन पर लगाते हैं। देहात में भी लोग बहुत स्थानों पर लगाते हैं। यह एक प्रसिद्ध औषधि है।

देखो बेटी, यह इतनी गुणकारी दवा है कि हमने इससे निर्मित लेप तथा तेल से सैकड़ों रोगियों को जीवन दान दिया है। जो लोग डाक्टरी प्लास्टर कटवाने के बाद भी हड्डी की पीड़ा तथा सूजन से पीड़ित रहते हैं उन्हें अगर कोई दवा ठीक करती है तो वह हड़जोड़ का तेल है। बहुत ज्यादा चोट लगने पर दर्द से कराह रहे लोगों को हड़जोड़ की पकौड़ी बनाकर खिलाने से ३-४ दिन में दर्द दूर हो जाता है। यह भी हजारों बार का अनुभव है।

सरस्वती – अच्छा दादी माँ, हमने हड़जोड़ के लाभ समझ लिए हैं। हम भी इसे अपने यहाँ लगा देंगे और बढ़ने पर लोगों को बांटेंगे। आप हमें १० रु. का तेल इसी बोतल में दे दें।

दादी माँ से तेल लेकर सरस्वती अपने घर गई और बाज़ार से दवाइयाँ मंगवा कर उन्हें बना कर मौसी की चोट पर बाँध दिया। ४-५ दिन के बाद मौसी बिल्कुल स्वस्थ हो गई। यह रहा हड़जोड़ का चमत्कार।

होमियो पैथिक चिकित्सा में इसे "सिमफाइटम" कहते हैं। होमियोपैथ डॉक्टर इसे हड्डी टूटने, हड्डी चिटक जाने तथा चोट, मोच और दर्द में बराबर प्रयोग करते हैं। अबसे ५० साल पहले तक हड्डी के टूट जाने, चिटक जाने या जोड़ की हड्डी के हट जाने पर पुराने जानकार पहलवान लोग, वैद्य लोग, जर्राह आदि पहले हड्डी के जोड़ को खींचकर बिठा देते थे फिर टूटे स्थान पर बाँस की चपटी लकड़ियों को कपड़े में लपेटकर, पहले हड़जोड़ वाला लेप बाँध देते थे, ऊपर से बाँस की लकड़ियाँ बाँध कर ऊपर से हड़जोड़ वाला तेल पीड़ा के स्थान पर टपकाते रहते थे इसी प्रकार सैकड़ों रोगी महीने दो महीने में ठीक हो जाते थे। साथ ही हड़जोड़ की पकौड़ी भी अवश्य खिलाते थे।

आप भी आसानी से हड़जोड़ अपने घर में लगा सकते हैं। लैटिन में इसे "सिसस क्वाड्रै-गुलैरिस" कहते हैं। शहरों में यह सजावट के लिए लगाया जाता है। इसके तने में गांठें होती हैं। कोई एक टुकड़ा तने का ले लें जिसमें कम से कम ३ गांठें हों। गमले में भुरभुरी मिट्टी भरकर एक गांठ व तने का ८-१० से.मी. भाग मिट्टी में दबा दें। एक खपच्ची से शेष तने को सहारा दे दें। १०-१५ दिन में अन्तिम गाँठ से नया कोमल तना निकलेगा जो जल्दी बढ़ेगा। अधिक पानी न लगावें अन्यथा पेड़ सड़ जाता है। पौधा ग्रीष्म ऋतु में विशेष रूप से बढ़ता है। गमला सदैव तेज़ धूप में रक्खें।

रो. मा.

पृष्ठ १५ का शेष

दाद पर आदिवासियों केप्रयोग

इसके परिपक्व बीजों से जो तेल प्राप्त होता है वह राजस्थान के आदिवासियों द्वारा हर प्रकार के चर्मरोग की दवा के रुप में व्यवहृत है। बिहार के संथाल और उत्तर प्रदेश में झाँसी के आदिवासी भी इसका प्रयोग करते हैं।

सागौन : इसे लैटिन में टेक्टोना ग्रैंजिन तथा अंग्रेज़ी में टीक कहते हैं। यह पश्चिमी घाट, मध्य भारत और बिहार में पाया जाता है।

पेड़ की लकड़ी के टुकड़ों का आसवन करते हैं जिससे एक तेल मिलता है जो मध्य प्रदेश के हलबी तथा अन्य आदिवासियों की दाद की दवा है।

पाँच उंगलियाँ साथ मिले तो मुट्ठी कहलाए
उंगलियों की चुस्ती-फुर्ती मुट्ठी की जान बन जाए.
जैसे
झंडु पंचारिष्ट
पाचन शक्ति बढ़ाए, तन्दुरुस्ती जगाए.
क्या आप जानते हैं कि ज़्यादातर बीमारियाँ हाज़मे की ख़राबी से शुरू होती हैं? उनके लक्षण भले ही अलग-अलग हों लेकिन उनका मूल कारण एक ही होता है.
कमज़ोर हाज़मा, ख़राब तन्दुरुस्ती, तो सुनिए! झंडु पंचारिष्ट, पांच गुणों वाला पाचक टॉनिक. आपके हाथ की उंगलियों की तरह झंडु पंचारिष्ट भी है आपकी पाचनक्रिया सुधारने का सुरक्षित व असरदार उपाय. चाहे वो बदहज़मी हो, ज़्यादा खाने की तकलीफ़ या गैस, वायुरोग या फिर हल्के जुलाब की ज़रूरत या भूख बढ़ाने का सवाल - झंडु पंचारिष्ट आपकी इन पाचन समस्याओं का समाधान है. और फिर यह केवल लक्षण विशेष के लिए ही असरकारक नहीं है. ५ उंगलियों के अलग अलग इस्तेमाल की अपेक्षा ज़्यादा प्रभावशाली मुट्ठी की तरह ही झंडु पंचारिष्ट में वे आयुर्वेदिक गुण हैं जो एक साथ मिलकर आपकी पूरी पाचन क्रिया को सुधारते और उसे स्वस्थ बनाते हैं.
झंडु पंचारिष्ट का नियमित इस्तेमाल कीजिए, कुछ ही दिनों में आप जान जाएंगे कि आप सेहतमंद हो रहे हैं.
याद रखिए, अच्छा हाज़मा याने अच्छी तन्दुरुस्ती! और फिर जान है तो जहान है!
झंडु पंचारिष्ट
पाँच गुणोंवाला पाचक टॉनिक
ZANDU PANCHARISHTA
झंडु पंचारिष्ट
४५० मिली और २०० मिली. में उपलब्ध.

हड़जोड़

कु. बबीता वर्मा, लखनऊ

हड़जोड़ सदा हरी-भरी दिखने वाली लता होती है जो वृक्षों की डालियों पर लटकी हुई या घरों में गमलों में लगी देखने को मिलती है। इसका तना मांसदार तथा बीच-बीच में जोड़युक्त होता है। तने को तोड़ने पर उसमें से रस निकलता है। यह लता देखने में सांकल (श्रंखला) के समान प्रतीत होती है इसी कारण इसका नाम अस्थिश्रृंखला भी है। लता में जो जोड़ पड़े होते हैं उनमें दो जोड़ों के बीच की दूरी ६-१० इंच तक होती है। लता पर चार धारियाँ पड़ी रहती हैं।

उगाने की विधि

इस वनौषधि को उगाने के लिए लता के एक जोड़ (भाग) को ज़मीन में दबा देते हैं, और करीब एक-दो सप्ताह के बीच उसमें अंकुरण निकल आता है।

भाषवार नाम : संस्कृत – अस्थिश्रृंखला, अस्थिसंहारी; हिन्दी – हड़जोड़, हड़जोखा; बंगला – हाड़जोड़ा। गुजराती - हाड़साँकल; मराठी – कंडूवेल; तमिल- पिण्डपि; तेलुगु – नल्लेरु लैटिन *सिसस् कांड्रंग्युलेरिस।*

औषधीय गुण

हड़जोड़ वात व कफ दोष नाशक, टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाली, गरम तासीर वाली, पचने में हल्की, बल बढ़ाने वाली तथा बवासीर में लाभदायक है। यह ज्यादा प्रयोग करने से पित्त दोष को बढ़ाने वाली होती है। इसके ताजे स्वरस में विटामिन-सी पाया जाता है जिस कारण यह मसूड़ों से खून आने वाले रोग में लाभकर है।

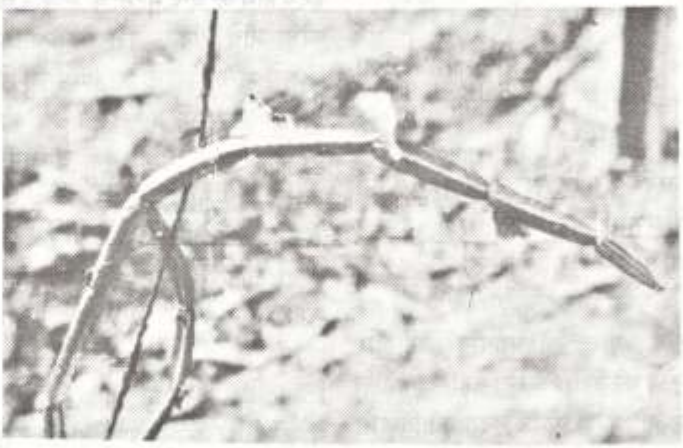

औषधीय उपयोग

हड्डी टूटने पर : आज भी गाँवों व शहरों में इस वनौषधि का प्रयोग पारम्परिक वैद्यों द्वारा किया जाता है। किसी न किसी गाँव में कुछ इस तरह के पारम्परिक वैद्य होते हैं जो मोच आने पर तथा हड्डी टूटने पर अपने अनुभव से टूटी हड्डी को एक सीध में लाकर ऊपर से हड़जोड़ का लेप लगा देते हैं, बाद में बाँस की पतली-पतली लकड़ियों को कपड़े से लपेटकर, टूटे हुए स्थान को चारों तरफ से बाँध देते हैं। हर दूसरे या तीसरे दिन बाद दवा बदलकर लगा देते हैं। कुछ वैद्य इसके साथ हड़जोड़ का रस भी पिलाने को देते हैं। इसी प्रकार मोच आने पर तथा किसी चोट की सूजन में भी हड़जोड़ का लेप लगाकर पट्टी से बाँध देते हैं।

आयुर्वेद के चिकित्सक भावप्रकाश ने इसके प्रयोग करने की विधि इस प्रकार समझायी है-

हड़जोड़ के टुकड़ों को छीलकर उसमें छिलका अलग की हुई उड़द की दाल को आधा परिमाण में मिलाकर पीस लें, फिर इसकी टिकिया बनाकर तिल के तेल में पका लें, इस पकी हुई टिकिया को चोट वाले स्थान पर रखकर बाँध देना चाहिए। इसके प्रयोग करने से वात दोष (सूजन, दर्द) शांत होते हैं।

अपच : पेट की खराबी होने पर हड़जोड़ के कोमल तने व पत्तों की सब्ज़ी बनाकर खिलायी जाती है।

क्या हृदय की बीमारी जानलेवा है?

वैद्य पूर्णचन्द्र जैन, वैद्य प्रमोद मालवीय, लखनऊ

हृदय की बीमारी, हार्ट अटैक, या एन्जाइना आदि नाम सुनकर ही बीमार मनुष्य हतोत्साह हो जाता है। वह अपने जीवन से निराश अनुभव करने लगता है और किसी कार्य में उसका मन नहीं लगता, उसकी व्यवसाय में रुचि जाती रहती है, घर में निराशा का वातावरण व्याप्त हो जाता है। वास्तव में व्यक्ति को भयभीत होने और निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हृदय के अधिकांश बीमार हृदय की विकृति के मरीज न होकर पेट की बीमारी के शिकार होते हैं। अतः योग्य चिकित्सक से समुचित परामर्श लेना आवश्यक होता है। हृदय की विकृति होने पर भी यदि वह चिकित्सक की सलाह से उचित आहार–विहार एवं औषधि का सेवन करता है तब उसे कोई उपद्रव नहीं होता और सोत्साह अपना कार्य करते हुए जीवन यापन कर सकता है। आइये, देखें यह कैसे संभव है।

मनुष्य के जीवन की समाप्ति तीन कारणों से होती है। हृदय के रुक जाने से, मस्तिष्क के कार्य न करने से एवं वृक्क द्वारा मूत्र निर्माण प्रक्रिया बन्द होने से। इसी कारण आयुर्वेद में हृदय, मस्तिष्क एवं वृक्क को तीन प्रधान मर्म कहा है। इनमें भी हृदय सर्वप्रधान है क्योंकि यह चेतना एवं मन का स्थान है और उसका कार्य बन्द होने पर मस्तिष्क एवं वृक्क भी कार्य करना बन्द कर देते हैं।

हृदय की रचना एवं क्रिया

हृदय हाथ की बन्द मुट्ठी के आकार का ऊपर चौड़ा नीचे सँकरा वक्ष में स्थित अंग है जिससे शरीर में रक्त का परिभ्रमण होता है। इसमें दो ऊपर तथा दो नीचे चार कोठे होते हैं। ऊपर के कोठे दक्षिण एवं वाम अलिंद एवं नीचे के कोठे दक्षिण एवं वाम निलय कहलाते हैं। दक्षिण अलिन्द का संबंध दक्षिण निलय से और वाम अलिन्द का संबंध वाम निलय से होता है। शरीर का संपूर्ण अशुद्ध रक्त दक्षिण अलिन्द में आता है और वहां से कपाट के द्वारा दक्षिण निलय में जाता है। अशुद्ध रक्त दक्षिण निलय से धमनियों से जिनमें कपाट भी होते हैं फुफ्फुसों में शुद्ध होने जाता है। रक्त में स्थित कार्बनडाइ–ऑक्साइड अलग होकर उसमें ऑक्सीजन आ जाती है। इसे ही रक्त की शुद्धि कहते हैं। शुद्ध रक्त शिराओं द्वारा वाम अलिन्द में आता है और वहां से वाम निलय में कपाट के माध्यम से जाता है। वाम निलय के संकोच से रक्त महाधमनी एवं संपूर्ण शरीर में जाता है। कोठों के मध्य के कपाट एक ओर को खुलते हैं जिससे हृदय के संकोच से रक्त आगे जाता है परन्तु कपाटों के बन्द होने पर पीछे नहीं आता। हृदय के संकुचन से रक्त के द्वारा संपूर्ण शरीर को पोषक द्रव्य एवं ऑक्सीजन मिलता है। जिस जगह रक्त न पहुँचने से ऑक्सीजन नहीं मिलता शरीर का वह हिस्सा मृत हो जाता है और कार्य नहीं करता।

हृदय की विशेषता

हृदय में संकोच एवं विस्फार की क्रिया निरन्तर उसकी मांस पेशियों द्वारा होती है। एक मिनिट में हृदय ७२ बार संकोच करता है और लगभग ४ लीटर रक्त संपूर्ण शरीर के पोषण के लिए भेजता है। हृदय का पोषण उससे लगी महाधमनी की दो कोरोनरी शाखाओं से होता है। संपूर्ण शरीर की धमनियाँ भी कोरोनरी शाखा के समान दो–दो होती हैं और उनकी प्रशाखाएँ विभाजित होकर अन्त में दूसरी ओर की प्रशाखा से मिल जाती हैं। इस कारण एक ओर की प्रशाखा से रक्त न मिलने पर दूसरी ओर की प्रशाखा से रक्त की आपूर्ति होने लगती है। हृदय में इस प्रकार का प्रबंध नहीं है। इनकी शाखा, प्रशाखाओं में विभाजित होकर अन्त में दूसरी ओर की प्रशाखा से नहीं मिलती और स्वच्छ ही रहती है। इससे यदि किसी प्रशाखा के अवरोध से रक्त की आपूर्ति बन्द हो जाए तो दूसरी ओर की प्रशाखा से रक्त की आपूर्ति न होने से उस प्रशाखा द्वारा हृदय का "रक्त आपूर्ति क्षेत्र" कार्य करना बन्द कर देता है। यही दिल का दौरा है।

हृदय में विकार

हृदय की खराबी अनेक प्रकार की होती है। हृदय की मांसपेशियाँ विशिष्ट एवं अनैच्छिक हैं। इनमें कमजोरी होने पर वे रक्त को पम्प कर शरीर में भेजने का कार्य ठीक नहीं कर पातीं जिसके परिणाम स्वरुप शरीर के दूरवर्ती अंगों का पोषण एवं कार्य बाधित हो जाता है। हृदय के कोठों के मध्य स्थित कपाटों में खराबी आने पर कपाट पूर्णतया

बन्द नहीं होते जिससे रक्त एक कोठे से दूसरे में ठीक से नहीं जाता और शुद्ध-अशुद्ध मिश्रित रक्त शरीर में पहुँचने से शरीर में धातुपाक अथवा मेटाबालिज्म की क्रिया ठीक नहीं होती। शुद्ध रक्त की प्राप्ति के लिए हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे हृतकंप तथा श्वास कष्ट होने लगता है। कभी-कभी जन्मजात विकृति के कारण कपाटों के पूर्ण निर्मित न होने से अथवा कोठों में जन्म से पूर्व के सूराखों के बन्द न होने से परिभ्रमण में अशुद्ध रक्त अधिक जाता है जिससे बच्चे का शरीर स्वतः अथवा परिश्रम करने पर नीला पड़ जाता है साथ ही श्वास कष्ट रहता है। सामान्यतः व्यक्तियों में ५० वर्ष की उम्र के बाद कभी-कभी हृदय को शुद्ध रक्त एवं पोषक सामग्री ले जाने वाली धमनी की प्रशाखाओं में संकोच अथवा किंचित अवरोध होने से हृदय में रक्त की कमी से सीने में दर्द उठता है इसे ही हृत्शूल या एन्जाइना कहते हैं और यदि किसी प्रशाखा में रक्त जम जाने अथवा अन्य कारण से पूर्ण अवरोध होता है तो उस प्रशाखा द्वारा हृदय के सम्बन्धित क्षेत्र में रक्त आपूर्ति बन्द होने से हार्ट अटैक हो जाता है। यदि हृदय का रक्त आपूर्ति क्षेत्र कम होता है और औषधि से रक्त आपूर्ति होने लगती है तो मरीज अच्छा हो जाता है और यदि रक्त आपूर्ति क्षेत्र बड़ा होता है तो हृदय के उस क्षेत्र को ऑक्सीजन एवं पोषक सामग्री न मिलने से हृदय कार्य बन्द होने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

हृदय विकार के कारण

आयुर्वेद ने शरीर में सभी विकारों का कारण वात, पित्त और श्लेष्मा की विषमता कहा है। शरीर में इनकी साम्यता, रक्त संवहन, धातुपाक, श्वसन आदि क्रियाओं को संतुलित रखती है। इनकी विषमता से संतुलन बिगड़ कर विभिन्न विकार उत्पन्न होते हैं। हृदय में वात, पित्त, कफ का संतुलन निम्न कारणों से बिगड़ जाता है :-

आहार में विविधता : अत्यन्त उष्ण, तीक्ष्ण, गुरु, अम्ल, कषाय एवं तिक्त रस प्रधान आहार का सेवन करने से, अधिक आहार के सेवन से, मोटापा आने से, बिना भूख के खाने से, आहार का पाचन न होने पर

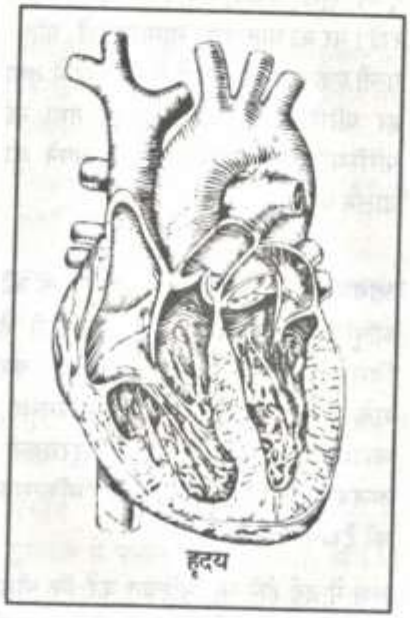

हृदय

भी आहार करने से, मदिरा के अधिक सेवन से, धूम्रपान करने तथा मादक द्रव्यों के सेवन से दोषों का संतुलन बिगड़ जाता है।

- अत्यधिक परिश्रम के परिणाम स्वरुप उत्पन्न वक्षस्थल के कार्यों के अवरोध के सामान्य होने के पूर्व ही अधिक मेहनत से कार्य करना।

- मानसिक चिन्ता, क्रोध, शोक, उद्वेग आदि से तनावग्रस्त रहना, उग्र स्वभाव के कारण हमेशा मानसिक दबाव में रहना, भूख-प्यास, टट्टी, पेशाब आदि वेगों के समय पर प्रवर्तन न करने से उत्तेजित होते रहना। दुश्चिन्ता, झुंझलाहट, असामान्य थकान आदि से अवसाद (डिप्रेशन) रहना।

- आनुवांशिक रोग : बचपन में आमवात की व्याधि के परिणाम स्वरूप हृदय के कपाटों में विकृति होना, मधुमेह के प्रभाव से धमनियों की प्रशाखाओं में अवरोध होना, उच्च रक्तचाप से हृदय की धमनियों का तनावग्रस्त रहना, मोटापा तथा अन्य कारणों से रक्त में मेद (कोलेस्ट्रॉल) की मात्रा की अधिकता होना। इससे धमनियों में अवरोध उत्पन्न होना, पुरानी खाँसी तथा तमक श्वास के कारण रक्त शुद्धि का कार्य ठीक न होना। फिरंग (सिफलिस) रोग के कारण धमनियों में परिवर्तन होना।

उक्त सभी कारणों से हृदय में दोषों का संतुलन बिगड़ कर हृदय रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग के लक्षण

अधिकांश व्यक्ति हृदय रोग से ५० वर्ष की आयु के बाद पीड़ित होते हैं। बाल्यावस्था में आमवात होने पर अथवा उच्च रक्तचाप, मधुमेह, या फिरंग रोग के परिणाम स्वरुप यह पहले भी हो सकता है। हृत्शूल या एन्जाइना में अधिकांश व्यक्तियों में छाती के बीच में, उदर के ऊपर के हिस्से में दर्द उठता है। कुछ लोगों में यह दर्द भोजन के उपरांत, शारीरिक परिश्रम अथवा मानसिक उत्तेजना के उपरांत देखा जाता है। पीड़ा छाती में होकर दर्द बाएं हाथ की ओर अथवा गर्दन या पीठ की ओर भी जा सकती है। दर्द के साथ बेचैनी होती है कभी-कभी सारे बदन में पसीना आ जाता है तथा सांस फूलने की शिकायत भी होती है। दिल का दौरा पड़ने पर दर्द अत्यधिक तीव्र होता है जो बाएं हाथ, गर्दन अथवा पीठ तक जाता है। मतली या वमन होना, घुटन तथा घबराहट, पसीना छूटना, सांस लेने में तकलीफ होना, रक्तचाप कम हो जाना हृदय की गति में विविधता और कभी-कभी बेहोशी भी हो जाती है। ऐसी

अवस्था में तुरन्त चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए अथवा अस्पताल में मरीज को भर्ती कराना चाहिए।

हृदय रोगी क्या करे?

साधारणतः ५० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को अपनी दिनचर्या में परिवर्तन लाना चाहिए। उच्च रक्तचाप, मधुमेह, तथा फिरंग की व्याधि होने पर उसका समुचित इलाज कराएं। मद्यसेवन, सिगरेट, बीड़ी आदि धूम्रपान बन्द करें। अपने वजन को संतुलित रखें। अधिक वजन होने पर अन्नपान एवं मेहनत से अपने वजन को कम करें। अत्यधिक भारी, वसायुक्त (चिकनाई), काफी गर्म या ठण्डा, अधिक मिर्च मसाले वाला भोजन न करें। भोजन समय पर तथा भूख लगने पर ही करें। भोजन में फल एवं हरी सब्जियों का प्रयोग अधिक करें। आलू, कन्द, चावल, पिट्ठी से निर्मित पदार्थों का सेवन न करें अथवा कम मात्रा में ही करें।

हृदय रोगी अथवा हृदय रोग की आशंका वाले व्यक्ति पूर्ण शाकाहारी रहें। अण्डे, मांस का सेवन न करें इससे अनेक विध उत्सर्जित द्रव्यों का रक्त में दबाव रहता है। दूध ठंडा कर उसकी मलाई निकालकर लें, दही एवं मट्ठे का सेवन रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करता है। हृदय रोगी को हल्का व्यायाम करना चाहिए। अत्यधिक थकाने वाला परिश्रम नहीं करना चाहिए। इसके लिए प्रातःभ्रमण सर्वोत्तम होता है। कुछ योगासन भी किये जा सकते हैं। हृदय रोगी को घबराना नहीं चाहिए, निराश नहीं होना चाहिए, तनावग्रस्त न होकर मानसिक संतुलन शान्त रखें, दिल में गाँठ न रखें, खुशी, गम, दुःख, सुख, तनाव, दबाव से अपने को मुक्त रखें। घर का वातावरण सामान्य रखें, पति-पत्नी एक दूसरे के कार्यों में, चिन्तन में तथा हर परिस्थिति में भागीदार बनें तथा नई परिस्थितियों में स्वेच्छा पूर्वक अपने को ढालने का प्रयत्न करें।

औषधि चिकित्सा

अधिकांश हृदय रोगों में हृदय में रक्त की आपूर्ति औषधि द्वारा बढ़ा दी जाती है जिससे स्वयं हृदय क्षतिपूर्ति का कार्य कर सके। उच्च रक्तचाप होने पर सर्पगन्धा, जटामांसी, शखंपुष्पी, ब्राह्मी, खुरासानी, अजवायन, असगन्ध का प्रयोग चिकित्सक की देखभाल में करें।

वक्ष में दर्द होने पर निश्चित करें कि पीड़ा हृदय के कारण है। पीड़ा रहने तक पूर्ण विश्राम करें। घबराहट एवं मानसिक चिन्ता को दूर रखें। विभिन्न आधुनिक जाँच एवं ई.सी.जी. द्वारा रोग का निश्चय करें। रक्त में मेद की मात्रा अधिक होने पर आरोग्यवर्द्धनि २ गोली दिन में ३ बार या शुद्ध गुग्गुल २-३ ग्राम दिन में ३ बार ४-६ माह सेवन करें। हृत्शूल के लिए बृहत, वात चिन्तामणि रस १ डेसीग्राम पुष्कर मूल क्वाथ के साथ ३-४ घण्टे के अन्तर से देवें।

हृदय में रक्त अधिक पहुँचाने को नागार्जुनाभ, योगेन्द्ररस, सफक जवाहर मोहरा, सहस्रपुटी अभ्रक में से कोई एक औषधि १-२ डेसीग्राम दिन में ३ बार देवें।

हृदय की गति, लय ठीक करने को अर्जुनत्वक चूर्ण, क्वाथ अथवा क्षीरपाक दिन में २-३ बार लेवें। हृदय की मांसपेशियों में कमजोरी आने पर ताँबे के योग हृदयार्णव १-२ डेसीग्राम, मुक्ताभस्म १-२ डेसीग्राम दिन में ३ बार लेना उपयोगी रहता है। पुरानी खाँसी एवं श्वास से उत्पन्न विकृति में हृदय का दाहिना भाग कार्य नहीं करता उसमें लाल कनेर का चूर्ण, स्वरस अथवा सत्व उपयोगी होता है।

संक्षेप में ५० वर्ष की आयु के बाद व्यक्ति शरीर के अनुकूल, नियमित, संयमित खान- पान, रहन-सहन रखे एवं मन को तनाव तथा दबाव से मुक्त रखे तो हृदय रोगों की आशंका नहीं रहती।

प्रिय पाठक,

"जीवनीय" का प्रकाशन लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस) के सदस्य संगठनों एवं कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग द्वारा भारत की लुप्तप्राय होती स्वास्थ्य की बहुमूल्य स्थानिक परंपराओं के विकास के लिये राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किए गए आंदोलन का भाग है।

पाठकों से अनुरोध है कि लोस्वापसंस तथा जीवनीय पत्रिका के सक्रिय सदस्य बन कर इस आंदोलन में अपना सहयोग दें तथा अपनी वाटिकाओं में औषधीय पौधे लगाकर व उनका प्रयोग करके स्वास्थ्य के सामान्य विकारों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ ले सकें।

– सम्पादक मंडल

कहावतों में स्वास्थ्य रक्षा सूत्र

वैद्य चन्द्रकान्त यादव, वाराणसी

इस स्तंभ में हम उन प्रचलित कहावतों का वर्णन करते हैं जो हमें स्वास्थ्य रक्षण के सामान्य व सरल सिद्धान्तों से अवगत कराती हैं। उत्तम स्वास्थ्य जीवन का आधार है जिसके संरक्षण और संवर्धन के सूत्र परपरागत कहावतों में प्रचलन में हैं। इन्हें दिनचर्या में अपनाकर हम स्वस्थ रह सकते हैं।

प्रातःकाल उठकर पानी पीना स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। आयुर्वेद के मतानुसार इससे स्वास्थ्य व आयु की वृद्धि और यौवन की स्थिरता प्राप्त होती है।

इस सम्बन्ध में कहावत है –

"प्रातःकाल उछि के पिये तुरन्तै पानी।
ता घर कबहूँ वैद न अछहै बात घाघ के मानी।।"

तदन्तर प्रातःकाल भ्रमण करने से शुद्ध हवा का सेवन करने के पश्चात शीतल जल से स्नान करने को कहा गया है।

"प्रातःकाल उठके घूमन जाव, फिर ठंड़े पानी से नहाव।"

इसके बाद व्यायाम करने को कहा गया है –

"जे नहाय करत कसरत सदा, वाको रोग कभी न बदा।"

भोजन और खान–पान के सम्बन्ध में भी कुछ उपयोगी कहावतें है –

"छोटा कवा, जमकर खवा।"

अर्थात छोटे–छोटे कौर और अच्छी तरह चबा कर खाने से ही वह शरीर को लगता है।

"जो खाय घनो ऊ मरो क्षनो।"

अर्थात भूख से अधिक खाना दीर्घजीवन के लिए हानिकारक है।

"अन्न चुकता, पन घी जुगता।"

अर्थात भोजन तो चाहे जितना ग्रहण करें किन्तु घी उतना ही खायें जितना शरीर पचा सके।

"नहाकर खावे खाकर सोवे, ताकी औसक कभी न होवे।"

अर्थात भोजन करने से पहले नहाये और बाद में हल्का विश्राम (दिन में) करने से व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

"तुरत पकावे तुरतहि खावे, बासी खाय न ओझ बढ़ावे।"

अर्थात गर्म व ताज़ा भोजन की प्रोटीन सुगमता से पचती है जिससे शरीर के सभी अंग स्वस्थ व स्फूर्त रहते हैं। बासी भोजन करने से तो तोंद बढ़ती है।

"घाघ उनकी बुद्धि विनासे रोटी खाये जो बासी।"

अर्थात घाघ कवि के मतानुसार बासी रोटी खाने से बुद्धि नाश होती है।

"खाके झटपट चलिये कोस, मरिये आप दैव के दोस।"

अर्थात भोजन के पश्चात कुछ समय विश्राम करने से पेट में रक्त का प्रवाह अधिक होता जिससे भोजन सुगमता से पच जाता है। भोजन के तुरन्त बाद तेजी से पैदल चलना या परिश्रम करना हानिकारक है।

"खाके मूते सूते बाऊ, काहे वैद बसावे गाऊं"

अर्थात भोजन के उपरान्त तुरन्त मूत्र त्याग करे और बायीं करवट सोवे तो गाँव में वैद्य को बसाने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

जीवनीय के मूल्यों में वृद्धि

जिस कारण से इस संयुक्तांक की कीमत बढ़ा कर ८ रुपये रखना हमारी विवशता थी, उन्हीं बढ़ती हुई कागज, डाक एवं छपाई की दरों जैसे कारणों के फलस्वरूप जीवनीय का चंदा भी हमें मजबूरन बढ़ाना पड़ रहा है। अतः अगले अंक से जीवनीय का वार्षिक चंदा बढ़ा कर ३० रुपये किया जा रहा है। अलबत्ता जीवनीय का आजीवन चंदा २५० रुपये तय किया गया है। आशा है हमारे प्रबुद्ध पाठक हमें अपना सहयोग देते रहेंगे और आजीवन चंदा भेजेंगे।

संपादक

त्वचा की देखभाल

कु. वीणा टंडन, लखनऊ

दूरदृष्टि और हित चिंतक वैद्यों ने अभ्यास-पूर्वक और अनुभव से शरीर के स्वास्थ्य-रक्षणार्थ कुछ नियम बनाये हैं। लेकिन आज के नये युग के निर्माण की ओर हम जो भाग- दौड़ कर रहे हैं उसका नतीजा मानव मन व त्वचा और शरीर स्वास्थ्य सभी पर हो रहा है। स्वास्थ्य ठीक रखना और त्वचा की देखभाल करना हमारा अपना कर्तव्य है और इसकी शुरुआत हमें चमड़ी की कुछ समस्याएँ जानने से करनी है।

चमड़ी की कुछ समस्याएँ उन रोगों द्वारा पैदा हो जाती हैं जो सीधे रूप से चमड़ी को प्रभावित करते हैं जैसे कि दाद, ददोरे या मस्से। कुछ समस्याएँ ऐसी भी हैं जो दूसरे रोगों के लक्षण के रूप में चमड़ी पर प्रकट होती हैं, जो कि पूरे शरीर पर असर डालते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रकार के घाव या चमड़ी की स्थितियाँ खतरनाक रोगों के लक्षण के रूप में उभर आते हैं।

वास्तव में चमड़ी के कई रोग ऐसे हैं जिनमें विशेष प्रकार के उपचार की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी कुछ ऐसे सामान्य नियम हैं जो त्वचा की देखभाल में काफी लाभ पहुँचाते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में त्वचा के प्रभावित भाग की विशेष रूप से देखभाल करनी होती है जैसे – यदि त्वचा पर निम्नलिखिति खतरनाक चिन्ह दिखाई दें –

जलन (प्रभावित जगह के आसपास की चमड़ी की लाली)।

सूजन, पीड़ा, ताप (गर्म अनुभव होता है)।

उपचार

यदि प्रभावित भाग गर्म और लाल है तो उसका इलाज गर्म चीज से करें। इसके विपरीत खुजली या जलन महसूस करने पर इलाज ठण्डी चीज से करें, और प्रभावित जगह पर सफेद सिरका मिले ठण्डे पानी में भीगा हुआ कपड़ा रखें।(इसका अनुपात १ पाव उबाल कर ठण्डे किए हुए पानी में दो बड़े चम्मच सिरका) शरीर के इस भाग को धूप से बचाना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि त्वचा पर खुजली वाले ददोरे या पित्ती (चमड़ी में एलर्जी प्रतिक्रिया) दिखाई दे तो इनकी चिकित्सा अति आवश्यक है।

उपचार

ठण्डे पानी से नहाएँ या ठण्डे अथवा बर्फ वाले पानी में भीगा हुआ कपड़ा प्रभावित जगह पर रखें। दलिया का ठण्डा पानी भी खुजली में राहत दिलाता है। दलिया को उबाल कर छान लें और बचे हुए पानी को ठण्डा होने पर प्रयोग में लाएँ (दलिया की जगह चावल के माण्ड का इस्तेमाल भी किया जा सकता है)।

प्रायः कई चीजें ऐसी हैं जैसे कि बिच्छू–बूटी, दंश–वृक्ष, विष माखल्ली, तथा दूसरे कई पौधेजिनके चमड़ी को छूने से फफोले, जलन या पित्ती हो सकती है। इसमें बहुत ज्यादा खुजली होती है। कई दूसरे कीड़ों के रस या बालों से भी ऐसी एलर्जी हो सकती है।

उपचार

एलर्जी पैदा करने वाली चीजों से दूर रहा जाए और वे चमड़ी को छूने न पाएँ तो यह समस्याएँ अपने आप दूर हो जाती हैं।

सिर के तेल वाले, पीले खुरंडों को रुसी या सिकरा कहते हैं। चमड़ी प्रायः लाल होती है और उसमें जलन भी होती है। यह तब होती है जब सिर को अक्सर धोया न जाए और सिर को ढककर रखा जाए।

उपचार

सिर को हर रोज धोएँ। सम्भव हो तो धीरे–धीरे सिर के सारे खुरंड और रुसी उतार दें। इन खुरंडों को नर्म करने के लिए पहले सिर पर गुनगुने पानी में भीगा तौलिया बाँधें। इस तरह की समस्या शिशुओं में भी पाई जाती है। इसलिए ऐसी स्थिति में शिशु के सिर को खुला रखें।

गर्दन, छाती ओर पीठ पर कभी–कभी दिखाई देने वाले गहरे या हल्के रंग के छोटे–छोटे दाग टाइनिया वर्सीकलर नामक चित्ती रोग होता है। इसमें प्रायः खुजली नहीं होती और आमतौर पर इसके लिए किसी दवा की भी जरूरत नहीं होती।

उपचार

१० भाग तिल का तेल, और १ भाग सल्फर की क्रीम बनाकर निशानों पर तब तक रोज लगाएँ जब तक वह गायब न हो जाएँ। आम लोगों का विचार है कि यह सफेद दाग खून की कमी के लक्षण हैं। लेकिन यह सही नहीं हैं। जो निशान केवल गालों पर हों, उन्हें किसी भी दवा की जरूरत नहीं होती।

युवा लोगों के चेहरे, छाती और पीठ पर मुँहासे हो जाते हैं। विशेष रूप से जब व्यक्ति में चिकनाई अधिक हो। कभी–कभी यह बड़े–बड़े फोड़ों का रूप भी ले लेते हैं।

उपचार

मुँहासों को उंगलियों से न छुएँ। इसके

अतिरिक्त पौष्टिक आहार खाना चाहिए और पानी भी काफी मात्रा में पीना आवश्यक है। पूरी और अच्छी नींद लेनी चाहिए।

कुछ विशेष चमड़ी की समस्याओं के अतिरिक्त व्यक्ति सामान्य नियमों और प्राकृतिक पदार्थों का नियमित रूप से सेवन करे तो स्वाभाविक रूप से उसकी त्वचा की देखभाल हो जाएगी। इसमें सबसे अधिक

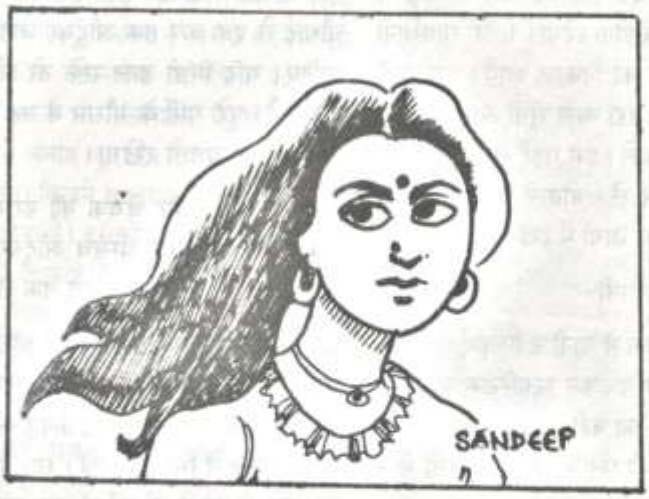

महत्वपूर्ण दूध और दही है। दही–मट्ठा का तो ८०% हिस्सा शरीर में खप जाता है। इसी प्रकार यदि दही का प्रयोग त्वचा की देखभाल के लिए किया जाता है तो इसके बहुत अच्छे परिणाम सामने आते हैं।

खुरदुरे हाथ

दही के दो चम्मच लेकर पाँच बूँद सरसों का तेल मिलाएँ। हाथों को भली प्रकार धोकर बाद में दही मिश्रित तेल से हाथों की हल्की मालिश कर डालें। दही सूख जाने पर हाथ धो लें और अपने आप सूखने दें। सोने से पहले दो–तीन दिन यही तरीका अपनाते रहें। इसी तरह चेहरे और शरीर के दूसरे अंगों को मुलायम कर सकते हैं।

चेहरे पर फुंसियाँ

त्वचा के छिद्र बन्द हो जाने के कारण जब शरीर की गर्मी को निकलने का रास्ता नहीं मिलता है तब फुंसियाँ निकल आती हैं। इसके लिए उचित विधि यह है कि चेहरे को धो–पोंछकर दही की मलाई मल दें और कुछ देर बाद धो दें। इससे त्वचा के छिद्र खुल जाएँगे और त्वचा भी मुलायम रहेगी।

चेहरे पर सूजन

इसके लिए यदिमट्ठेमें अजवायन पीसकर मिला दें और ग्यारह दिन तक ऐसेमट्ठेका सेवन करें तो चेहरे की सूजन में कमी आएगी। यदि इससे लाभ न हो तो चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक होता है।

मुँहासे

दस ग्राम बेसन और दस ग्राम हल्दी का चूर्ण दही में मिलाकर चेहरे की मालिश करें। सूख जाने पर चेहरा धो डालें। इस तरह एक सप्ताह में मुँहासों में लाभ होगा।

सफेद दाग

बासी मट्ठे में थोड़ा बेसन मिलाकर घोल लीजिए और यह घोल न एकदम पतला कीजिए और न ही बहुत कड़ा बनाइये। सफेद दागों पर रोज़ाना मलकर सो जाइये और प्रातःकाल उठ कर धो लीजिए।

प्रायः त्वचा की देखभाल के लिए तरह–तरह के प्रसाधन प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो जड़ी बूटियों से बनाये जाते हैं और कुछ रासायनिक तत्वों के मिलाने से बनते हैं। इन दोनों तरह के प्रसाधनों का प्रयोग एक निश्चित सीमा में करना ही उचित है। क्योंकि इनसे कभी–कभी त्वचा का अचानक या थोड़ी देर बाद लाल होना, जलन महसूस होना और एलर्जी होना देखा गया है।

यह निष्कर्ष निकलता है कि घरेलू साधन त्वचा की देखभाल में सबसे अधिक सहायक होते हैं। जैसे कि नींबू का रस, दूध, दही, अण्डे की ज़र्दी और शहद।

हमें एजेंट चाहिए

जीवनीय के हिंदी व अंग्रेज़ी दोनों संस्करणों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए हमें अपने पाठकों व अन्य एजेंटों की मदद चाहिए है। हमें आशा है कि आप हमें इसकी खुदरा बिक्री व वार्षिक चन्दे इकट्ठे करने में मदद करेंगे। इस कार्य के लिए हम उपयुक्त कमीशन देने को तैयार हैं। इच्छुक व्यक्ति सम्बन्धित शर्तों के लिए कृपया निम्न पते पर सम्पर्क करें।

वितरण मैनेजर, जीवनीय
ई–III/२५०, सेक्टर एच,
अलीगंज, लखनऊ – २२६ ०२०

औदुंबर जल

वैद्य र.म. नानल, मुंबई

गूलर की जड़ के पानी को औदुंबर जल कहते हैं। भारतीय संस्कृति में कुछ वृक्षों का विशेष धार्मिक महत्व है। उन्हें दिव्य गुणों से युक्त मानकर उनकी पूजा करने की भी परंपरा है। इस प्रकार के चंद वृक्षों में "उदुंबर" अर्थात् गूलर भी एक है। इस वृक्ष के नीचे पानी होता है। प्रत्येक बड़े वृक्ष के दाहिनी ओर पानी का स्रोत होता है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। अनुभवी लोगों का भी यही कहना है। अन्य किसी महावृक्ष के परिसर में ज़मीन के नीचे पानी हो या न हो लेकिन गूलर की जड़ से पानी अवश्य प्राप्त होता है।

गूलर की जड़ का पानी सचमुच "दिव्य" है। क्योंकि यह बहुत समय तक उत्तम और उपयोगी बना रहता है। इस पानी को पीने से शरीर की कांति बढ़ती है। वृद्ध वैद्यों में एक किवदंती है कि ग्रीष्म एवं शरद ऋतु में जब बड़ी बेचैनी रहती है, उन दिनों गूलर के पेड़ के नीचे स्थित बिलों में सर्प रहने लगते हैं। गूलर की जड़ के पानी को पीने से शरीर की चमक वैसी ही हो जाती है जैसी कि नागों की होती है। अस्तु, गूलर के पेड़ के औषधीय गुण आयुर्वेद में वर्णित हैं। यहाँ हम केवल उसकी जड़ के पानी की समीक्षा करेंगे।

औदुंबर जल की प्राप्ति

पूर्ण विकसित गूलर के पेड़ से कुछ ही दूर एक गड्ढा खोद लें। वहाँ गूलर की जड़ें दिखेंगी। उनमें से कोई एक कत्री उंगली के बराबर मोटी जड़ चुन लें और शाम को उसमें चीरा लगा दें, और एक स्वच्छ मिट्टी के घड़े में उस जड़ को डाल दें। जड़ को पेड़ से काट कर अलग कतई न करें। ऊपर से स्वच्छ कपड़ा बाँध दें। रात भर जड़ से घड़े में पानी का स्राव होता रहेगा। सवेरे सावधानी के साथ घड़े को निकाल लायें। इस पानी को पुनः चार तहों वाले सूती अथवा रेशमी कपड़े से छान लें। इसे गहरे रंग के काँच की बोतलों में भर लें। बोतलों को यथासम्भव ठण्डे स्थान पर छाया में रखें।

विशेष सावधानी-

- औदुंबर जल में पानी न मिलाएँ।
- बोतल का ढक्कन प्लास्टिक का होना चाहिए, रबर का नहीं।
- इस जल को प्लास्टिक की बोतलों में न रखें।
- कुछ दिनों बाद बोतलों में बादल जैसा उठा दिखेगा। उसे अलग करके पानी को इस्तेमाल किया जा सकता है।
- औदुंबर जल से अजीब सी दुर्गंध आये तो उसका उपयोग न करें।

गुणधर्म: औदुंबर जल ठण्डा, तृप्तिदायक, एवं कसैले-मीठे स्वाद का होता है।

औषधीय उपयोग

गर्मी के दिनों में शरीर में पानी की मात्रा कम हुआ करती है, जिससे शरीर में सूखापन आ जाता है। होंठ, गला, मुँह, जीभ, हथेली और तलवों में शुष्कता प्रतीत होती है। थकान महसूस होती है, काम करते नहीं बनता, कमजोरी लगती है। खट्टे-मीठे व प्रवाही (जो न कड़े हों न तरल) पदार्थों को खाने की इच्छा होती है। धूप में निकलने की इच्छा नहीं होती और निकलने पर महाकष्ट होता है। यह कष्ट वैशाख के महीने में अत्यधिक होता है। ऐसी स्थिति में दोपहर ११-१२ बजे तीन-चौथाई से एक कप तक औदुंबर जल लेना चाहिए। यदि मिश्री डाल सकें तो और भी अच्छा है। पूरे गर्मी के मौसम में यह प्रयोग बीमारियों से बचाये रखेगा।

बुखार, खसरा और चेचक की हरारत के उतरने पर चार-चार चम्मच औदुंबर जल दिन में ३-४ बार ३-४ हफ्ते तक लें।

ग्रीष्म ऋतु में धूप में आने-जाने से आँखें और चेहरे के लाल होने, फुन्सी, घमौरियों की जलन होने पर आँखों पर सूती कपड़े की पट्टी औदुंबर जल में भिगोकर रखें। साथ ही रात को सोने से पहले चौथाई से एक कप तक औदुंबर जल पियें।

शरद ऋतु में पित्त की प्रबलता रहती है जिससे उष्णता स्वाभाविक रुप से बढ़ती रहती है। इसके कारण शरीर में गर्मी बढ़ जाती है और हथेलियों, तलवों, आँखों और चेहरे पर जलन होती है। ऐसे में नित्य चौथाई कप औदुंबर जल आवश्यकतानुसार ४-६ बार लें। आँखों पर औदुंबर जल की पट्टी रखें अथवा आँखों में दो-दो बूँद डालें। अप्रतिम लाभ होगा।

अधिक शराब पीने से शरीर में जलन, मल-मूत्र त्याग के समय जलन और शौच की सख्ती में औदुंबर जल बड़ा ही लाभदायक है। ऐसे में हर १५ मिनट पर चौथाई कप

शेष पृष्ठ ४२ पर

अशोक

यह वृक्ष महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक होता है। इससे बनने वाली आयुर्वेदिक शास्त्रीय औषधि "अशोकारिष्ट" आज भी महिलाओं के बीच अपनी पहचान बनाए हुए है। इसका वृक्ष हमेशा हरा-भरा दिखने वाला करीब २५-३० फुट ऊँचा होता है। इसकी छाल लाली लिए भूरे रंग की दिखती है। इसके पत्ते हरे रंग के, लम्बे, चिकने व कोमल होते हैं। इसमें फूल गुच्छों में निकलते हैं जो गाढ़े लाल रंग के होते हैं।

भाषावार नाम : इसे संस्कृत में अशोक, हेमपुष्प व ताम्रपल्लव नाम से जानते हैं। इसे हेमपुष्प इसलिए कहते हैं क्योंकि इसके पुष्प (फूल) हेम (सोने) के रंग समान दिखते हैं तथा ताम्रपल्लव का अर्थ है – जिसकी छाल ताँबे के समान हो। इसका लैटिन नाम *"सराका इण्डिका"* है।

औषधीय गुण

यह वनौषधि पचने में हल्की, ठण्डी तासीर वाली, शरीर के रंग को निखारने वाली तथा रक्त को साफ करने वाली होती है।

इसका महिलाओं के प्रजनन अंगों – जैसे– गर्भाशय, अण्डाशय (ओवरी) पर विशेष प्रभाव होता है। इसके अलावा यह वात दोष के कारण उत्पन्न रोगों में लाभकर होती है।

औषधीय प्रयोग

जिन महिलाओं को मासिक नियमित

चित्र डा. एच. पी. शर्मा

समय पर न हो, या रक्त की मात्रा सामान्य से अधिक आती हो तथा मासिक स्राव के समय बदन में दर्द, थकावट, किसी काम में मन न लगना आदि मासिक धर्म से सम्बन्धित तकलीफ हो उसमें "अशोक छाल" का प्रयोग लाभकारी है।

प्रयोग करने की विधि : अशोक छाल को १६ गुना जल में पकाते हैं। जब, इसका आठवाँ भाग बच जाय तो उतारकर छान लें, फिर छने भाग को आठ गुने दूध में पकाते हैं, जब दूध अच्छी तरह पक जाय तो उतारकर ठण्डा कर लें और मासिक स्राव नियमित होने तक आधा कप सुबह–शाम लें।

जिन महिलाओं का मासिक स्राव सामान्य मात्रा से अधिक हो वे किसी योग्य चिकित्सक से जाँच कराकर ही इसका प्रयोग करें क्योंकि कभी–कभी गर्भाशय में गाँठ होने के कारण मात्रा से अधिक रक्त आने लगता है।

विशेष : प्रायः बाज़ार में "अशोक छाल" के नाम से नकली अशोक की छाल बेची जाती है। नकली अशोक वृक्ष (पॉलीएल्थिया लौंगीफोलिया) जगह–जगह शोभा के लिए लगाया जाता है। नकली अशोक का वृक्ष बहुत लम्बा व सीधे तने का होता है। इसके फूल बहुत छोटे, हरे रंग के तथा पत्ते कम चौड़े व लम्बाकार होते हैं। दोनों पौधे अलग–अलग प्रजाति के हैं।

नकली अशोक

रोमैलो मालवीय, लखनऊ

अन्य नाम न मिलने के कारण इसे नकली अशोक के नाम से ही जाना जाता है। गुणधर्म में यह अशोक से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। बाज़ार में प्रायः अशोक की छाल के स्थान पर इसी की छाल बिकती है। बाग बगीचों, सड़क के किनारे खड़े इस वृक्ष की छाल को अज्ञान लोग ही नहीं जानकार लोग भी औषधि कार्यरत ग्रहण करते हुए देखे गए हैं। इसका मुख्य स्थान बंगाल है जहाँ इसे देवदारु भी कहते हैं। गुजरात में इसे असोपलाव कहते हैं। असली अशोक गुजरात में आशोपुलो कहलाता है। लैटिन में इसे *पालिएल्थिया लांगीफोलिया कहते हैं।*

इसके वृक्ष सीधे लम्बे कुछ घनी व शीतल छाया वाले होने से बड़े–बड़े बागों में और शहरों में सड़कों के किनारे प्रयत्न पूर्वक लगाये जाते हैं। देखने में यह बहुत सुहावने प्रतीत होते हैं।

गुणधर्म : इसकी छाल कसैली, कड़वी, संकोचक तथा रक्त प्रदरनाशक है। फल रक्तातिसार नाशक है। छाल के क्वाथ से कुल्ला करने से मुख के छाले दूर होते हैं।

रक्तप्रदर पर : ताज़ी ५ तोले छाल को सिल पर महीन पीसकर उसमें तुरव मलंगा के बीज के लुआब को मिलाकर बकरी के दूध के साथ नित्य प्रातः सेवन करायें। रात्रि के समय तुरव मलंगा के बीज भिगो देना चाहिए। प्रातः उसे उक्त छाल के कल्क के साथ खूब रगड़कर मोटे कपड़े से रस को निचोड़ लें इसी रस के बराबर मात्रा में बकरी का दूध मिलावें और रोगी को दें। रक्त प्रदर में अप्रत्याशित लाभ होता है।

हमारे कुछ प्रमुख वितरक

मै. पुष्पक सेल्स एजेन्सी,
२५१ डबल स्टोरी,
वेलकम कालोनी,
सीलमपुर, जी.टी. रोड,
दिल्ली.

श्री आर.ए. दुबे एंड सन्स,
१०७, बादशाही मंडी,
इलाहाबाद.

मै. अलका न्यूज़ एजेन्सी,
रेलवे स्टेशन, कानपुर.

मै. विद्या मंदिर,
डी–४७/१३७, रामपुरा,
वाराणसी.

बशीर बुक स्टाल,
रोडवेज़ स्टेशन,
हरदोई.

श्री अशोक कुमार अरोड़ा,
रेलवे बुक स्टाल,
मुरादाबाद.

ज्ञानकोश

अग्नि

पं. काशीनाथ गोरे, लखनऊ

अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति "अंग", "अग", "अन्च" आदि धातुओं से मानी गई है। इस प्रकार सामान्यतया ऊर्ध्वगामी, व्यापक, गतिशील ये अग्नि के अर्थ होते हैं। अग्नि शब्द लौकिक रूप से आग, चिन्ता, कोप, शोक और ज्ञान के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। अग्नि तेजस् तत्व का रूप होने से पंचमहाभूतों में से एक है। सूर्य सायंकाल अग्नि में प्रविष्ट होता है और उदयकाल में अग्नि सूर्य में प्रविष्ट होती है। इस प्रकार सूर्य और अग्नि का तादात्म्य है। इससे "ताप" भी अभिप्रेत है।

वैदिक और लौकिक साहित्य में अग्नि के जो कतिपय पर्यायवाची प्रयुक्त हैं, उनमें से कई आयुर्वेद में प्रयुक्त "अग्नि" पर प्रकाश डालते हैं। अग्नि का एक नाम "सर्वपाक" है, जो सभी द्रव्यों को पचाने की क्रिया की ओर संकेत करता है। "तनूनपात्" यह शब्द संकेत करता है कि जब तक तनु (शरीर) में अग्नि अवस्थित है तब तक वह बना रहता है अर्थात जीवन चलता रहता है। अग्नि के "दमूनस" और "अमीवचातन" ये नाम अमीव और दमू अर्थात् रोगों को नाश करने का संकेत करते हैं। अग्नि का "शुचि" यह नाम उसके शोधक होने की पुष्टि करता है।

आयुर्वेद में मुख्यतया अग्नि शब्द जठराग्नि, कामाग्नि, औदर्याग्नि, देहाग्नि या पाचकाग्नि के अर्थ में आता है। इस अग्नि में ज्वाला, धुआँ और अंगारे नहीं होते, परन्तु यह दहन, शोषण और पचन करता है तथा ऊष्मा या ताप देता है। त्वचा या चेहरे पर कान्ति, तेज़, प्रभा, भारचरता भी इसी अग्नि का स्वरूप है। शरीर में ऊष्मा भी अग्नि का ही रूप है।

देह में स्थित अग्नि का शरीर-क्रिया में वास्तविक रूप पित्तोष्मा है। पित्त आग्नेय द्रव्यों का मिश्रण है जो अग्निकर्म संपादित करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि देहाग्नि से तात्पर्य उन प्राकृतिक द्रव्यों से है जो पित्त के अन्तर्गत हैं और उनकी क्रियाओं से उत्पन्न ऊष्मा भी देहाग्नि का ही एक रूप है।

इस प्रकार देह की सभी प्रकार की पचन क्रियाओं में अग्नि विद्यमान होती है चाहे वह अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ही क्यों न हो। अग्नि को इस कारण तीन वर्गों में विभाजित किया गया है- १. पाचकाग्नि, २. भूताग्नि, और ३. धात्वाग्नि।

(क्रमशः)

एक गोत्र में विवाह क्यों नहीं ?

भारतीय परम्परा का मत है कि युवक व युवती का विवाह एक गोत्र वाले परिवार में नहीं करना चाहिये, बल्कि दोनों का गोत्र अलग-अलग होना चाहिये। इस मत का वर्णन सर्वप्रथम **मनु स्मृति** में देखने को मिलता है।

" असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।।

अर्थ- *द्विजातियों अर्थात् ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्यों को ऐसी स्त्रियों से विवाह करना चाहिए जो मातृकुल में सपिण्ड न हों और पितृकुल के अनुसार एक गोत्र के न हों।*

इस मत को मानते हुये आयुर्वेद के **आचार्य चरक** ने भी कहा कि **"स्वस्थ संतान"** के उद्देश्य के लिये विवाह भिन्न-भिन्न गोत्रों में ही करना चाहिये।

इस सिद्धान्त के पीछे वैज्ञानिक सोंच यह है कि विभिन्न गोत्रों में विवाह होने पर **"वंशज रोगों"** के कम होने की सम्भावना होगी। कुछ रोग ऐसे होते हैं जो यदि माता-पिता को होते हैं तो उनकी संतानों को भी हो जाते हैं। **इस तरह के रोग ठीक होने में भी बड़ी कठिनाइयां होती हैं।** अतः वंशानुगत रोगों को दूर करने के लिये युवक व युवती का विवाह एक गोत्र में नहीं करना चाहिये।

विभिन्न गोत्रों में विवाह करने से दूसरा फायदा यह होता है कि संतान के रंग, रूप, शारीरिक व मानिसक विकास तथा कुछ आदतों में भी परिवर्तन हो जाता है।

गेंदा

वैद्य एस. ए. खान, सरौरा (सीतापुर)

गेंदा जाड़े की ऋतु का फूल है। जहाँ-तहाँ इसके सुन्दर-सुन्दर खिले हुए फूल मिल जाते हैं। घरों में भी लोग इसको क्यारियों, गमलों में लगाते हैं। इसके फूल पीले, लाल, केसरिया रंगों में खिलते हैं। ये छोटे तथा बड़े कई प्रकार के होते हैं। बड़े आकार के फूलों को हजारा गेंदा कहते हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी – गेंदा; फारसी – सहबर्ग, गुल हजारा; संस्कृत–झन्डू; मराठी-झेंडु; गुजराती – गलगोटी; बंगाली – गेंदा; अंग्रजी – फ्रेंचमैरिगोल्ड; *लैटिन – टाजेटीस एरेक्टा।*

गेंदे के बीज वर्षा के आखिरी समय में बोये जाते हैं। बेड़ के रूप में बीज किसी एक क्यारी या गमले में बो दिये जाते हैं। पौधे उग जाने और करीब ४ से ६ इंच के हो जाने पर पहले से तैयार क्यारी या गमले में बेड़ के पौधों को रोप दिया जाता है। इसका पौधा सीधा बढ़ता है। कभी–कभी पौधा बढ़ने पर झाड़ी नुमा हो जाता है। इसकी ऊँचाई भूमि की शक्ति (उर्वरता) पर निर्भर करती है। यह एक गज से ज्यादा ऊँचा भी हो सकता है। इसका तना खुरदरा होता है। फूल एवं पत्तियों में एक विशेष प्रकार की तीखी गन्ध होती है। इसके स्वरस का स्वाद तीखा और कसैला होता है। इसका पुष्प अकेला नहीं हजारों पुष्पों का समूह होता है।

बीज

इसके फूल के हर छोटे से फूल की जड़ में एक बीज उत्पन्न होता है। इसके बीज एवं स्वरस में एक तिक्त सत्व होता है जिसके कारण इसमें विशेष प्रकार की गन्ध होती है।

प्रयोग में आने वाले अंग

पत्र, फूल, एवं बीज।

औषधीय गुण

इसका रस तिक्त, कषाय और विपाक कटु होता है। वीर्य उष्मक होता है। गेंदा कफ, पित्त और रक्त पित्त को शान्त करने वाला होता है। यह जीवाणुनाशक, ज्वर नाशक,

जाड़ों के फल व सब्ज़ियाँ गर्मियों में

डा रवि कुमार शर्मा, लखनऊ

जाड़ों में विभिन्न सब्ज़ियों एवं फलों की बहुतायत रहती है। इनमें से कुछ को बिना रसायनों के सुरक्षित करने की आसान विधियाँ इस प्रकार हैं।

सूखी हरी मटर: ताज़ी व भरे दाने वाली कच्ची मटर लेकर उसमें से दानों को निकाल लें और अखबार के ऊपर एक तह सी बनाकर ऊपर से पिसा नमक डाल दें और फिर इस तह के ऊपर दूसरा अखबार डाल कर, नीचे व ऊपर वाले अखबारों को किनारों से स्टेपिल कर दें। अब इस मटर के थैले को तब तक रोज़ फर्श पर धूप में रखें जब तक अन्दर की मटरें सूख न जायें। मटर सूख जाने पर किसी साफ काँच की बोतल में निकाल कर ऊपर से कुछ और पिसा नमक डाल कर डिब्बा बन्द कर दें। गर्मियों में जब मटर बनानी हो तो आवश्यकतानुसार ४–५ घण्टे तक सूखी मटर को पानी में भिगो दें। ताज़ा हरी मटर तैयार सब्ज़ी के लिए है।

सूखी सेम : इसी प्रकार सेम को पतला–पतला काट लें और उपरोक्त विधि से सुखा लें। आवश्यकता होने पर इसे ३–६ घण्टे पानी में भिगोएँ, जब तक कि सूखी कटी सेम भीग कर ताज़ी कटी सेम न बन जाए। अब इसे आप विभिन्न व्यंजनों में काम में ले सकती हैं। अखबार की जगह स्याही सोखता से ढकी छेददार लकड़ी की ट्रे भी उपयोग में लायी जा सकती है।

सूखी गाज़र : ताज़ी लाल गाज़रों को छीलकर धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें और इन टुकड़ों को भी ऊपर बताई विधि से सुखा कर डिब्बे में भर लें। पुलाव बनाने में या अन्य व्यंजनों में पानी में भिगोकर प्रयोग में लायें।

इसी प्रकार कुछ अन्य सब्ज़ियाँ भी सुखाकर संरक्षित की जा सकती हैं जैसे फूल गोभी, चुकन्दर, हरी मिर्च, अदरक, बाँकला की फली इत्यादि।

हरी सब्ज़ियों का अचार

साधारणतः अचार बनाने की कला बड़ी ही जटिल होती है। खासकर मसालों का अनुपात। अतः हम यहाँ खत्म होते अचार में बचे मसाले व अचार का उपयोग करके सब्ज़ियों के अचार की विधि दे रहे हैं।

सुखाने के लिए तैयार की गयी सब्ज़ियों को आधे से एक मिनट के लिए प्रेशर कुकर में थोड़ा पानी लेकर भाप में पकाएँ जिससे कि सब्ज़ियाँ मुलायम पड़ जाएँ, अब इन भाप दी गई सब्ज़ियों में थोड़े से पिसे नमक को ऊपर से बुरक कर थाली या ट्रे में फैला कर धूप में फैला लें और इन सब्ज़ियों के टुकड़ों को स्वाद के अनुसार आम, आँवले या मिर्च के अचार की बराबर की मात्रा के पुराने या पहले बचे मसालों के साथ मिलाकर मर्तबान में भर दें और ऊपर से सरसों का गर्म किया हुआ तेल भर दें। गर्मी आने तक अचार बन कर तैयार हो जाएगा।

गेंदा का शेष

ग्रहों को शान्त करने वाला, शोक को दूर करने वाला, एवं मूत्रल होता है।

औषधीय उपयोग

घरेलू चिकित्सा के रूप में गेंदा निम्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है :–

- चोट लग जाने या कट जाने पर गेंदे की पत्तियों का स्वरस लगाने और पत्तियों का कल्प बाँधने पर रक्त बहना बन्द हो जाता है और घाव में जीवाणुओं का संक्रमण नहीं होता है। घाव की सूजन भी शीघ्र घट जाती है।
- बर्रों, ततैया, चींटि, मधुमक्खी आदि के काटने पर गेंदे की पत्तियों का स्वरस लगाने से लाभ होता है।
- कान के दर्द में गेंदे का अर्क गुनगुना करके डालने से कान का दर्द कम हो जाता है।
- गेंदे के पत्र स्वरस को १ तोले की मात्रा में काली मिर्च के साथ लेने पर खूनी बवासीर या रक्तातिसार में लाभ होता है।
- कफज या कफ पित्त, शिरः शूल होने पर गेंदे का पत्र स्वरस अकेला या लोबान के साथ पीस कर मस्तक पर चन्दन की तरह लगाने पर शिरः शूल में आराम मिलता है।
- हाथ पैरों और पेट पर सूजन होने पर गेंदे का पत्र स्वरस लगासे सूजन कम हो जाती है।
- कुछ हकीम लोग पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों में अत्याधिक बढ़ी हुई कामेक्षा को शान्त करने के लिए गेंदे के बीजों का चूर्ण ५ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ प्रातःकाल एवं सायंकाल खिलाते हैं।
- गेंदे की पुष्पों की माला के रूप में पहनने और पास रखने या उपासना स्थल पर रखने से वातावरण शुद्ध रहता है। मन की राजस व तामस प्रवृत्तियाँ शान्त रहती हैं और मन को शान्ति मिलती है।

अतः घरेलू उपचार के रूप में गेंदे के विभिन्न प्रकार के प्रयोगों को आजमा कर देखें। यह कतई निरापद है।

कुश

वैद्य कृष्ण चन्द भूषण, चण्डीगढ़

कुश या कुशा एक औषध द्रव्य तो है ही, साथ ही धार्मिक कृत्यों में भी काम आने वाला क्षुप है, जिसका वर्णन अथर्ववेद में भी आता है। इसी की बड़ी जाति को दाभ या दर्भ कहते हैं। इसी कारण कुश और दर्भ पर्यायवाची समझे जाते हैं। इसी जाति का एक और क्षुप कास होता है जो गुण धर्म में कुश के ही समान होता है। गाँवों में प्रायः घरों के छप्पर कास के बनते हैं।

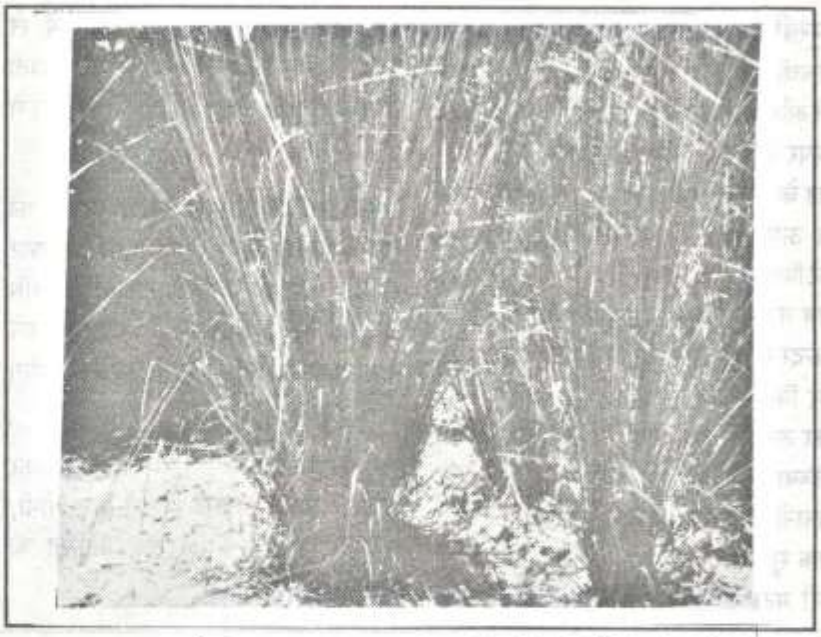

भाषावार नाम : संस्कृत – कुश, सूत्यग्र, दर्भ, यज्ञभूषण; हिन्दी – कुश, डाभ; बंगला – कुश; मराठी – दर्भ; गुजराती – दाभ, दामड़ो, कुश; लैटिन – *एराग्रोस्टिस साइनोसुरायडिस।*

कास के भाषावार नाम : संस्कृत – कास, कासेक्षु, इक्षुगंधा; हिन्दी – कास, कांस; बंगला – केशोघास, केशे; मराठी – कसाड, कसई, कासेरावत; गुजराती – कांसडो; अंग्रेज़ी – थैच ग्रास; लैटिन – *सैकरम स्पौनटेनियम।*

गुणधर्म

औषधि प्रयोग में इनकी जड़ें ही ली जाती हैं। कुश यज्ञ, होम तथा अन्य धार्मिक कृत्यों में भी प्रयुक्त होता है। यह लघु, स्निग्ध, मधुर एवं शीतवीर्य है। यह मूत्रल, रक्तातिसार, प्रवाहिका, पथरी तथा दाह में गुणकारी है।

प्रयोग

अतिसार : कुश और कास (जड़)का क्वाथ पित्तातिसार में अत्यन्त गुणकारी है। आमातिसार में केवल कुशामूल का काढ़ा ही काफी है

पथरी : कुश, कास, गोखरू, धमासा तथा पाषाण भेद का क्वाथ बनाकर दिन में दो बार पिलाने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है।

कास : इसके मूल के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण तथा खांड मिलाकर पीने से कास में लाभ होता है।

रक्त पित्त और पित्तज–शूल : कुश, कास, शर, दाभ, ईख, इन सब के मूल तथा मुलेठी का समभाग चूर्ण कर लें। यह चूर्ण २५ ग्राम, दूध २०० ग्राम तथा पानी १०० ग्राम को इतना पकायें कि पानी जलकर दूध मात्र रह जाय, फिर छानकर खांड मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

मूत्रकच्छ तथा बस्ति विकारों पर : कुश, कास, से सभी बस्ति विकार शान्त होते हैं।

स्मरण शक्ति वर्धनार्थ : कुश मूल तथा बादाम गिरी को रात में भिगोकर सुबह कूटपीस ठंडाई बनाकर पीने से कुछ ही दिनों में स्मरण शक्ति बढ़ती है।

अतीस

वैद्य मायाराम उनियाल, ताड़ीखेत (रानीखेत)

अतिविष (अतीस) बाल रोग चिकित्सा में बहुचर्चित, बहुपयोगी तथा अतिगुणकारी वनौषधि है। इसी कारण इसे शिशु भैषज्य भी कहा गया है। अतीस हिमालय में मिलने वाली द्विवर्षायु वनस्पति का मूल कन्द है। बाज़ार में कड़वी एवं मीठी अतीस के नाम से इसके कन्द बाहर से भूरे व अन्दर से सफेद मिलते हैं।

यह वनस्पति हिमालय में ९ हजार फीट की ऊँचाई से लेकर १२ हजार फीट की ऊँचाई तक बुग्यालों (एलपाईन मेडोज) की ढलानों पर पाई जाती है। उत्तराखण्ड हिमालय में भिलंगनाघाटी, केदारनाथ, फूलों की घाटी, पिण्डारी, कश्मीर, लेह-लद्दाख, सिक्किम, भूटान एवं नेपाल में पाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय : इसका पौधा एक फीट लम्बा, एक वर्षायु, तने मुलायम एवं पत्तों से ढके, शाखायें चतुष्कोणीय, पत्र-अण्डाकार, दन्तुरित, पुष्प-हरित-नीलवर्ण के चमकीले एवं फल- पंचकोष्ठीय होते हैं। इसकी जड़ें द्विवर्षायु, २ कन्द वाला (१ से २ इंच लम्बाई) एवं औषधीय गुण वाली होती है। आयुर्वेद निघण्टुकारों ने श्वेत, पीत, रक्त एवं कृष्ण भेद से चार प्रकार के अतीस का उल्लेख किया है। फूल लगने का समय जुलाई से अगस्त होता है। औषधि संग्रह सितम्बर के माह में उचित रहता है।

भाषावार नाम : संस्कृत नाम- अतिविषा (अर्थात अतीस वत्सनाभ कुल एवं प्रजाति विशेष होने पर भी विषरहित होती है), हिन्दी - अतीस, अरबी - जादवार, तमिल - अति-वादायम, तेलुगु- अति-वासा, लैटिन- *एकोनाइटम हैटिरोफाइल्लम।*

औषधीय गुण

मूल रस एवं स्वाद में कटु, गुण-लघु, विपाक-कटु, वीर्य-उष्ण, त्रिदोष-शामक, दीपन, पाचन, कृमिघ्न, शोथघ्न, वेदनास्थापन एवं तिक्त पौष्टिक है। अतीस श्रेष्ठ दीपक, पाचक, संग्राहक औषधि है।

औषधीय उपयोग

बच्चों के अपचन एवं उल्टी होने पर पर्वतीय क्षेत्र की महिलायें अतीस को माँ के दूध के साथ घिस कर दिन में २-३ बार प्रयोग करती हैं।

बच्चों के पेट में दर्द एवं कब्ज़ होने पर अतीस एवं कुटकी गुनगुने जल में घिसकर प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

बालकों में ज्वरातिसार, उल्टी आना, एवं खाँसी में अतिविषा का चूर्ण ५०० मिली ग्राम से १ ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

आमातिसार में अतीसचूर्ण १० ग्राम, सोंठचूर्ण १० ग्राम एक लीटर पानी में उबाल कर आधा शेष रहने पर पेय बनाकर रोगी को सेवन कराने से लाभ होता है।

संग्रहणी रोग में अतीस, बेलगिरी एवं नागरमोथा की जड़ का समान भाग चूर्ण मट्ठे के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।

असली अतीस की पहचान : असली अतीस स्वाद में या तो मीठा होगा या कड़वा, इसको जीभ पर रखने से कोई चरपरा पन, या किसी अन्य प्रकार का कोई संवेदन नहीं होना चाहिए। इसे खुला रखने पर इसमें कीड़े पड़ जाते हैं। जिससे इसके औषधीय गुण भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अतीस को तेल में डुबो कर भी रखते हैं।

आपके अनुभव

जैसा हम समय-समय पर अपने पाठकों से अनुरोध करते रहे हैं, हम प्राथमिक स्वास्थ्य संबंधी आपके अनुभवों का विशेष स्वागत करते हैं। यदि आपने जीवनीय में उल्लिखित या अन्यथा प्राप्त जानकारी के आधार पर कुछ लाभकारी या हानिकारक अनुभव किए हैं तो हमें आपसे अपेक्षा है कि आप अपने अनुभवों को हमें अवश्य लिखें ताकि उनसे अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें।

- संपादक मंडल

निशोथ

वैद्य एस.ए. खान, लखनऊ

यह प्रसिद्ध रेचक द्रव्य है। इस लता का कान्ड तिकोना होता है, इसी कारण इसे त्रिवृत भी कहते हैं। यह काली और लाल दो प्रकार की होती है। काली निशोथ अति तीव्र रेचक व विषैली होती है। अतः लाल निशोथ ही प्रयोग में लाई जाती है। जहाँ पर निशोथ का निर्देश हो वहाँ पर लाल निशोथ को ही ग्रहण किया जाता है।

इसकी लता बहुवर्षी होती है जो दूसरे पेड़ों पर फैलती है। इसके कान्ड से दूध जैसा स्राव निकलता है। यह समस्त भारत में, आद्र स्थानों पर समुद्र तल से ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसके घण्टाकार फूल सितम्बर–अक्टूबर में निकलते हैं, जो सफेद रंग के २–३ इंच लम्बे होते हैं। इसकी जड़ ही वीर्यवान होती है और प्रयोग में लाई जाती है परन्तु लोग इसके तने के टुकड़ों को भी काट कर जड़ों में मिला कर बेचते हैं। इस कारण शुद्ध और सही निशोथ बाज़ार में मिलना मुश्किल हो जाता है। जिस निशोथ के दोनों सिरों पर गोंद लगा हो वही उत्तम होती है।

निशोथ के गुण : निशोथ मधुर और कषाय रस वाली, गरम और कटु विपाक होती है। यह कफ और पित्त शामक और वात को बढ़ाने वाली होती है।

मात्रा : ३ से ६ ग्राम।

भाषावार नाम : हिन्दी– निशोथ; पंजाबी– तिखि; मराठी– निशोन्तर; गुजराती– नसोतर; बंगला– तेड्डी; अंग्रेज़ी– टरपैथरूट; लैटिन– *ओपरक्युलाइना टरपेथम।*

औषधीय उपयोग

इसका उपयोग स्वतंत्र रुप से रेचक द्रव्य के रूप में होता है और यह विभिन्न प्रकार के औषधि योगों में भी डाली जाती है। इसका स्वाद खराब नहीं है और विशेष ऐंठन भी नहीं करती है, अतः विबन्ध (कब्ज) दूर करने के लिए ढाई से तीन ग्राम निशोथ मूल का चूर्ण, १ ग्राम सोंठ चूर्ण और सेंधा नमक या थोड़ी सी काली मिर्च मिलाकर, मिश्री या चीनी मिलाकर लेने से सुखपूर्वक रेचक हो जाता है।

जलोदर, शोथ आदि में निशोथ का प्रयोग किया जाता है। इसमें इसकी मात्रा कोष्ठ और रोगी के शारीरिक बल के अनुसार निर्धारित की जाती है।

उदर–कृमि, पाण्डुरोग और तिल्ली बढ़ जाने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है।

पित्त, कफज या कफ पित्तज प्रकृति वाले लोग पित्त और कफ को शान्त करने या कम करने के लिए निशोथ का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु साथ में सोंठ का चूर्ण अवश्य प्रयोग करें जिससे ऐंठन पैदा न हो तथा वात वृद्धि न हो जाय।

लगातार कब्ज वाले लोग निम्न अनुभूत योग को बनाकर उपयोग कर सकते हैं –

लाल निशोथ	– ५० ग्राम
मुनक्का दाख	– ५० ग्राम
हीबेर	– ५० ग्राम
मिश्री	– ५० ग्राम

मुनक्के के बीज निकालकर, सभी द्रव्यों को कूट और छानकर बेर के बराबर गोली बना लें। सोने से पहले १–२ गोली उष्ण जल से अपने कोष्ठ और आवश्यकतानुसार लें।

पाठकों के लिए

हम कुछ अपरिहार्य कारणों से "जीवनीय" का यह विशेषांक आप तक उचित समय पर नहीं पहुंचा सके । इसके लिए हमें खेद है। परन्तु हमें विश्वास है कि प्रस्तुत अंक की सामग्री एवं साज सज्जा को देखकर आप निराश नहीं होंगे और इस देरी के लिए हमें क्षमा कर सकेंगे। आशा है हम अगले अंकों को समय से आपको उपलब्ध करा सकेंगे। प्रस्तुत अंक पर आपकी प्रतिक्रियाओं की हमें विशेष अपेक्षा रहेगी।

संपादक मंडल

मुलेठी

मुलेठी एक ऐसी वनौषधि है जिसके बारे में सामान्यतः लोग यह जानकारी रखते हैं कि इसकी जड़ को मुख में रखकर चूसने से खाँसी, गला बैठना आदि में लाभ मिलता है एवं गला सुरीला होता है। गले की बीमारी में लोग मुलेठी को पान के साथ भी काफी प्रयोग करते हैं। हिन्दू परिवारों में हवन आदि पूजा-अर्चनाओं में भी मुलैठी का प्रयोग किया जाता है। मुलैठी को यष्टिमधु भी कहा जाता है क्योंकि इसकी जड़, जिसका चिकित्सा कार्यों में प्रयोग होता है वह स्वाद में मीठी होती है इसके अलावा इसकी तासीर ठण्डी है। गले की बीमारी में लोग मुलैठी को पान के साथ भी काफी प्रयोग करते हैं।

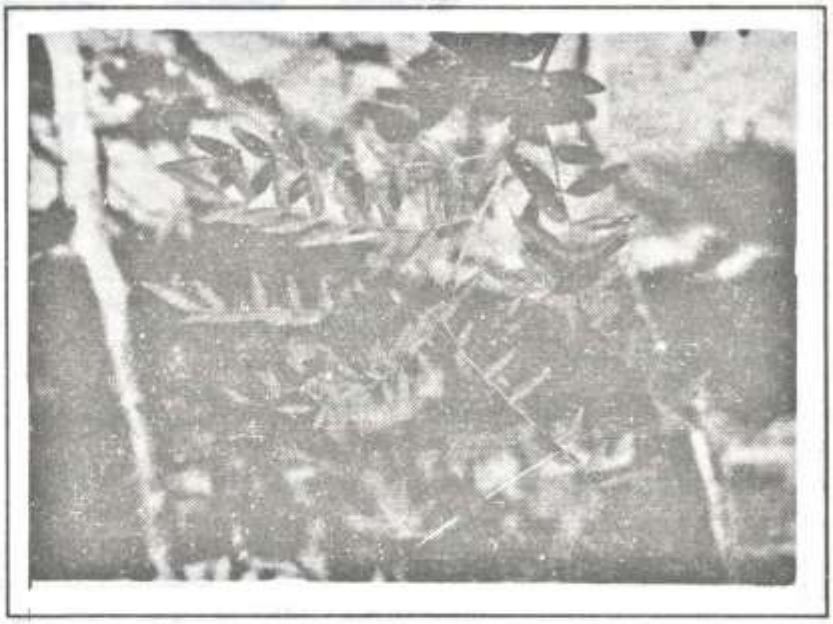

इसका पौधा लगभग डेढ़ मीटर से दो मीटर तक ऊँचा होता है। जड़ें गोल, लम्बी, झुर्रीदार तथा फैली हुई होती हैं। इसकी फली ढाई से.मी. लम्बी, चपटी होती हैं जिसमें २ से लेकर ५ की संख्या में बीज होते हैं। चिकित्सा में प्रयोग के लिए इसके पौधे का भूमिगत तना व जड़ सुखाकर, छिलका हटाकर या छिलके सहित उपयोग में लाया जाता है। इसकी जड़ का रंग हल्का पीला होता है तथा इसमें रेशे भी अधिक होते हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी – मुलहठी, मुलेठी, जेठीमध; बंगला – यष्टिमधु; मराठी– जेठीच्मध; गुजराती – जेठीमध; पंजाबी– मुलेठी; तमिल– अतिमधुरं; तेलुगु– अतिमधुरमु; मलयालम – इराती मधुरम। लैटिन – *ग्लिसराइझा ग्लॅब्रा।*

औषधीय गुण

मुलैठी ठण्डी तासीर वाली, देर से पचने वाली वनौषधि है। यह स्वाद में मीठी लगती है। यह बालों के लिए लाभकर, शरीर का रंग साफ करने वाली तथा शारीरिक बल बढ़ाने वाली होती है। यह बढ़े हुए वात व पित्त दोष का शमन करती है। सूजन, खाँसी, दमा, कब्ज़, पेट की जलन, गला बैठना आदि रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। भारतीय चिकित्सक चरक के मतानुसार यह वमन (उल्टी) में भी लाभकर है।

प्रयोग

पेट की जलन : नियमित समय पर भोजन न करने से, अधिक संख्या में सिगरेट पीने से, मदिरापान करने से, अधिक मिर्च-मसालेदार भोजन करने से पेट में जलन, खट्टी डकार व दर्द होने लगता है। इसमें मुलैठी की जड़ मुँह में रखकर चूसते रहने से या ३-४ ग्राम मुलैठी चूर्ण दिन में तीन-चार बार लेने से लाभ मिलता है। इस रोग में मुलैठी इसलिए लाभ करती है क्योंकि मुलैठी का रस मधुर तथा तासीर ठण्डी होती है जो बढ़े हुए पित्त दोष का शमन करती है।

गला बैठना व खाँसी : ठण्ड लग जाने पर, ज्यादा जोर से लगातार बोलने-चिल्लाने अथवा गाना गाने से गला बैठ जाता है इसमें आवाज़ भारी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में भी मुलैठी की जड़ मुँह में रख कर धीरे-धीरे चूसना चाहिए। ऐसा करने से मुलैठी से जो रस निकलता है वह गले की सूजन दूर करता है।

कभी-कभी ज्यादा धूम्रपान करने की वजह से आवाज़ बैठने लगती है तब मुलैठी का सेवन लाभदायक होता है।

खाँसी में भी मुलैठी लाभकारी है। इसके प्रयोग करने से फेफड़ों में जमा कफ ढीला होकर बाहर निकलता है तथा फेफड़े के अन्दर नलियों की सूजन दूर होती है।

बल वृद्धि के लिए : मुलैठी का रस मधुर होने के कारण यह शरीर के लिए बल बढ़ाने वाली औषधि है। इसके लिए मुलैठी चूर्ण का सेवन ३ ग्राम प्रतिदिन सादे पानी के साथ करना चाहिए।

मुलैठी दस्तावर होती है अतः पेट को भी साफ रखती है।

पेट का फोड़ा

मुलहठी की नजर

डॉ. आर.के.शर्मा एवं श्रीमती सुनीता शर्मा, लखनऊ

कार्य की अधिकता, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं अन्य तनाव इत्यादि विभिन्न कारणवश जब पेट के किसी भी भाग में घाव बन जाते हैं तो इसे पेट का फोड़ा भी कहा जाता है। ज्यादातर ये फोड़े पेट के नीचे वाले हिस्से ड्योडिनम में होते हैं। किन्हीं कारणवश जब म्यूकोसा (आंतरिक झिल्ली) की तह क्षत विक्षित हो जाती है तो पेट में उपस्थित अम्ल के कारण घाव बढ़ता जाता है। रोगी को आमाशय से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वह कोई तला, मसालेवाला गरिष्ठ भोजन नहीं कर सकता है। घाव अधिक बढ़ जाने से मृत्यु तक सम्भव है। आयुर्वेद में औषधीय वनस्पतियों से इस व्याधि को ठीक करने का विस्तृत वर्णन है। यहाँ हम मुलहठी से इस व्याधि को ठीक करने का आधुनिक वैज्ञानिक वृतान्त लिख रहे हैं। आशा है पाठक पढ़कर लाभ उठायेंगे।

मुलहठी पर किये गए अनुसंधानों से इसके रासायनिक संगठन व इसकी औषधीय कार्यक्षमता पर अभूतपूर्व परिणाम प्राप्त हुए हैं।

रासायनिक संगठन

ताज़ा मुलहठी में ५०% जल होता है जो सूखी मुलहठी में केवल १०% ही रह जाता है। इसका मीठापन इसमें पाये जाने वाले "ग्लिसराइजिन" नामक रसायनों के कारण होता है जो कि "ग्लिसराइजिक" अम्ल के रूप में मुलहठी में पाया जाता है। यह रसायन मुलहठी के ज़मीन के अन्दर पाये जाने वाले भाग में ही पाया जाता है। इसकी मात्रा विभिन्न प्रजातियों में २–१४% तक होती है। इसके अतिरिक्त इसमें आइसो लिक्विरिटिन (एक प्रकार का ग्लाइकोसाइड) स्टेरायड इस्ट्रोजन (गर्भाशय उत्तेजक हारमोन), ग्लूकोज़ ३.८%, सुक्रोज ३–७%, रेज़िन २–४%, स्टार्च ४०%, उड़नशील तेल .०३–.३५%, इत्यादि रसायन होते हैं।

आधुनिक अनुसंधान

मुलहठी में पाया जाने वाला प्रमुख रसायन मुख की लार ग्रन्थियों को उत्तेजित करता है जिससे भोजन का पूर्ण पाचन संभव होता है। इसी प्रकार इसी रसायन का एक घटक "कार्बीनो क्सोलोन" आमाशय की श्लेष्म ग्रन्थियों को उत्तेजित कर आमाशय में श्लेष्म (म्यूकस) की मात्रा बढ़ा देता है जिससे पेट के फोड़े या घाव को शीघ्र भरने में मदद मिलती है। ऐसीडिटी (अम्लता) से आमाशय को होने वाले घातक असर को यह श्लेष्म ही बचाता है। यही नहीं, अनुसंधानों से यह भी पाया गया कि मुलहठी का यही प्रमुख घटक आँत व आमाशय के मरोड़ (स्पाज्म) को दूर करने में बहुत ही कारगर है। मुलहठी को ड्योडिनल अल्सर के लिये भी, (जो कि आमाशय के अल्सर से कहीं ज्यादा गम्भीर व असाध्य होता है) बहुत ही प्रभावकारी पाया गया है।

औषधीय मात्रा

मुलहठी का चूर्ण ३–६ ग्राम एक बार में दिन में २ से ३ बार, मुलहठी का सत्व आधे से एक ग्राम तक दिन में २ से ३ बार, क्वाथ या स्वरस ५ मिली लीटर से १० मिली लीटर तक दिन में तीन बार लें।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चलता है कि इससे आमाशय की रस ग्रन्थियों से ग्लाइकोप्रोटीन्स नामक रस का स्राव बढ़ जाता है जो कि आमाशय के कोषों व ऊतकों की आयु तो बढ़ाता है ही वरन् छोटी–मोटी टूट–फूट को भी तुरन्त ठीक कर देता है।

भिलावा

वैद्य मुरलीधर पु. प्रभुदेसाई, देवगढ़

भिलावा का वृक्ष देखने में सुन्दर, और बीस से चालीस फीट तक ऊँचा होता है। भिलावे के फल का उपयोग एक तरफ तो वैद्य लोग अपने चिकित्सा कार्यों के लिए करते हैं तो दूसरी तरफ धोबी लोग कपड़े पर पहचान के लिए काला धब्बा भिलावे के फल के रस से लगाते हैं। धोबी लोग इस कार्य के लिए कच्चे फलों को उपयोग में लाते हैं क्योंकि कच्चे फलों से दूध जैसा स्राव निकलता है जो पकने पर कुछ काले रंग का हो जाता है। लोगों का विश्वास है कि भिलावे के वृक्ष को घर के पास नहीं लगाना चाहिए क्योंकि जब इसमें फूल आने लगते हैं तो इसके स्पर्श से शरीर में फफोले पड़ जाते हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी – भिलावा; बंगला– भेला, भेलातुकी; मराठी – बिब्बा;गुजराती– भिलामू; तेलुगु – जिडिचेट्टु; तमिल – शेरनकोट्टै; लैटिन – *सेमेकार्पस् अनाकार्डियम्।*

औषधीय गुण

भिलावे का रस मीठा व कषैला होता है तथा इसकी तासीर गरम होती है। यह शुक्र धातु बढ़ाने वाला तथा पचने में हल्का होता है। भिलावा त्वचा रोग, बवासीर, तमक श्वास (दमा), सफेद दाग व कृमि रोगों में लाभकारी है। यह बढ़े हुए वात व कफ का शमन करता है।

उपयोग

शरीर पर वाह्य प्रयोग : मोच, ठेस या ठण्ड के कारण सूजन व दर्द होने वाले स्थान पर भिलावा को गरम करके जो तेल निकले उसे लगाना चाहिए।

बवासीर : मस्से वाले भाग को भिलावा से जलाकर धुएँ से सेंकना। गाय के घी में भल्लातक पीसकर गुड़ के साथ लेप करना तथा सूखे गोबर (कंडे) को जलाकर सेकने से लाभ मिलता है।

पुराने घाव : इसमें सुअर की चर्बी व भिलावे का तेल मिलाकर लगाना चाहिए।

दाद : भिलावा को तेल में पीसकर लगाना चाहिए।

पाँव फटना (बिवाई) : भिलावा को राल तेल में गरम करके मलहम बनाकर लगाना चाहिए।

कान से पीप निकलना : किसी साफ पत्ते पर मक्खन लेकर, भल्लातक गरम करके उससे निकलने वाली तेल की बूँदें उस पर गिरा देते हैं फिर उस मक्खन को पिघलाकर, रुई द्वारा कान में डालते हैं और उसी रुई से कान को ढक देते हैं। यह प्रयोग लगातार सात दिन तक करते हैं।

आभ्यांतर प्रयोग

साँस की तकलीफ में : गरम किए भिलावे से निकली तेल की बूँदों को दूध में डालकर पीने से लाभ मिलता है। शुद्ध भिलावे को मुलैठी के ३ ग्राम चूर्ण के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

पेट के कृमि : ३ ग्राम बायविडंग का चूर्ण लेकर उसमें गरम भिलावे से निकली तेल की बूँदें मिलाकर गीला कर लेते हैं। इसके बाद इसमें ३ ग्राम गुड़ मिलाकर उसकी छोटी–छोटी गोलियाँ बनाकर रख लेते हैं। बच्चों को १–१ गोली सुबह–शाम सात दिन तक देनी चाहिए। बच्चों में कृमि की तकलीफ में यह योग लाभकर है।

सूखी बवासीर : इस बवासीर में मस्से सूखे रहते हैं अर्थात खून निकलने की शिकायत नहीं होती। इस तकलीफ में भल्लातक का प्रयोग इस तरह करें – ५०० मि.ली. पानी में पहले दिन एक, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, इस प्रकार ५ दिन तक बढ़ती मात्रा में और उसके बाद क्रमशः घटती मात्रा में भिलावा काट कर डालें। इसमें पानी मिलाकर धीमी आँच पर पकाएँ और जब पानी घटकर करीब ६०–६५ मि.ली. शेष रह जाए तो इसे छान लें, इसके बाद छने भाग में दुगुनी मात्रा में दूध मिलाकर पीयें।

इस प्रकार से बना भिलावा दूध योग बुद्धिवर्धक है, इससे पेट साफ होता है, भूख खुलकर लगती है, शरीर हल्का महसूस होता है, जवानी में महसूस होने वाली कमजोरी दूर हटती है, तथा हल्का बुखार (हर रोज़ आने वाला) दूर हो जाता है।

जोड़ों का दर्द : ६ ग्राम शक्कर लेकर उस पर गरम किये भिलावे के तेल की इतनी बूँदें डालें कि उसकी गोली बन सके। यह गोली गरम पानी के साथ सुबह–शाम लेने से दो–तीन दिन में दर्द कम होता है। भिलावे

का बीज शुक्रवर्धक होता है। स्वस्थ व्यक्ति जाड़े के मौसम में अगर इसका सेवन करे तो शरीर में रोग प्रतिकार की शक्ति बढ़ती है। इसलिए बंगाल में इसका अधिक सेवन किया जाता है।

सावधानी

भिलावे प्रयोग करते समय कुछ जानकारी रखना आवश्यक है।

निषिद्ध ऋतु : गरमी का दिन, शरद ऋतु।

निषिद्ध व्यक्ति : गर्भिणी, छोटे बालक, गरम मिजाज के व्यक्ति व वृद्ध व्यक्ति।

पथ्य : दूध, दही, घी, शक्कर, छाछ और भात।

अपथ्य : मांस, नमक, उष्ण पदार्थ, जलपान (प्यास लगने पर पानी की जगह दूध ही पीयें।)

सावधानी

भिलावे का प्रयोग करते समय रोगी अपने पेशाब की जाँच करता रहे। यदि पेशाब का प्रमाण घट जाए और उसका रंग लाल हो जाए तो भिलावा का प्रयोग तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

अति सेवन से उत्पन्न लक्षण

भिलावे का ज्यादा प्रयोग कर लेने पर या अशुद्ध भिलावे के सेवन से शरीर पर खाज, जलन, खूब पसीना आना, प्यास अधिक लगना, पेशाब आना आदि लक्षण दिखने लगते हैं।

निवारण उपाय

शरीर पर जलन या खुजली व चकत्ते पड़ने पर नारियल का तेल लगाना चाहिए। इमली के पत्तों का रस लगाएँ या तिल का तेल भी लगा सकते हैं।

भल्लातक शोधन की विधि

औषधि कार्यों में प्रयोग के लिए अच्छे पके फल लेकर उनको पानी में डालें और जब वे डूब जाएँ, तभी उनका प्रयोग करें। इन फलों को लेकर ईंट के टुकड़ों के साथ बोरे में रखकर रगड़ें, फिर इनको धोकर प्रयोग करें।

पृष्ठ ३० का शेष

औदुंबर जल

औदुंबर जल पियें। दिन भर में आधे से एक लीटर तक औदुंबर जल पीने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। लेकिन मद्यप बंधु यह न समझें कि शराब में औदुंबर जल मिला लिया जाय तो शराब पीने से होने वाली शिकायतें न होंगी।

सर्जरी के बाद तीव्र औषधियों की प्रतिकूल प्रतिक्रिया से शरीर में जलन होने की सम्भावना रहती है। ऐसा होने पर सवेरे खाली पेट एक कप औदुंबर जल लें। १ से ३ सप्ताह तक इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

सफेद दाग और त्वचा के रंग बदलने पर औदुंबर जल लेने की प्रथा गुजरात में प्रचलित है। पित्त प्रधान सफेद दाग में, जिसमें दाग लाल होते हैं और जलन होती है, ऐसे लक्षणों में नित्य ४ से ६ बार ४ से ६ चम्मच औदुंबर जल लें और यह प्रयोग आवश्यकतानुसार छः महीने से लेकर साल भर तक करें। इससे निश्चित लाभ होता है और अन्य घातक बीमारियों से सुरक्षा भी मिलती है।

प्राचीन वैद्य परंपरा में टूटी हड्डी के जुड़ने की प्रक्रिया को शीघ्र पूर्ण करने के लिए एक से लेकर छः महीने तक रोगी को नित्य दोपहर एवं रात के भोजन के साथ १० ग्राम गेहूँ के सत में लगभग ६० मि.ली. औदुंबर जल मिलाकर थोड़ा-थोड़ा लेने को दिया जाता है।

लोहार, वैल्डर, बेकरी कर्मी, इंजिन ड्राइवर आदि अग्नि सम्पर्क का कार्य करने वालों को अग्नि के सम्पर्क से सम्भावित दुष्परिणामों से बचने के लिए नित्य ४-४ चम्मच औदुंबर जल लेना चाहिए।

(पं. माधवाचार्य द्वारा मूल मराठी से रूपांतरित)

लोकोक्ति

खाय कै सूतै बांव

काहेक वैद्य बसावै गांव ?

रविशंकर शुक्ल, लखनऊ

खाना खाने के बाद यदि बांयी करवट को सोया जाय तो ऐसा करने से पेट के रोग नहीं हो पाते इस कारण गांव में वैद्य की बसने की आवश्यकता नहीं।

यूक्कारिल

(एक ऊंचे दर्जे की लेपन औषधि)

यूक्कारिल आयुर्वेदिक तत्वों और विधियों के आधार पर बनाई हुई एक लेपन दवा है। वात संबंधी दर्द, संधियों की पीड़ा, पीठ की पीड़ा, मोच, सिरदर्द, सर्दी, वगैरह बीमारियों के लिए यह बहुत लाभदायक है। साइनोसाइटिस से उत्पन्न बेचैनी को भी कम करता है। खिलाड़ियों को होनेवाली पेशी संबंधी पीड़ाओं को एकदम शांत करता है।

निर्माता :

ज्योतिस फार्मस्यूटिकल्स

XV/932, कोच्चि 33 केरल

केवांच

डॉ. एस.के नाथ, डॉ. पी.बी.बेहेरे,
एवं डॉ. रामहर्ष सिंह, वाराणसी

भारत वर्ष में कपिकच्छु नाम से केवांच का प्रयोग सहस्त्राब्दियों से वाजीकरण के लिए होता आ रहा है। इसका आधुनिक वानस्पतिक नाम "मुकुना प्रूरिएन्स" है। इसे अंग्रेज़ी में "काउ-हेज या काउ-इच" (गोक्षुप या गोकच्दु) कहते हैं। कपिकच्छु का शाब्दिक अर्थ "बंदर खुजली" होता है। इसकी फलियों के संएर्क से बंदरों की तरह खुजाते रहना पड़ता है।

केवांच का प्रयोग प्रमुख रूप से वाजीकरण के लिए होता है। किन्तु अनेक अन्य रोगों की चिकित्सा में भी यह उपयोगी सिद्ध होता है। यह एक उष्ण कटिबंधीय लता है। जिसमें टेढ़ी-मेढ़ी ५ से १० से.मी. तक लम्बी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों पर काँटों जैसे रोएँ होते हैं। जिनके सम्पर्क से तीव्र खुजली उत्पन्न होती है। फलियों में ४-६ काले दाने होते हैं। जिनका उपयोग चिकित्सा में होता है। पत्तियाँ त्रिशल्कित होती हैं। पत्रक लगभग अंडाभ, दीर्घ वृत्ताकार या अंडाभ समचतुर्भुजाकार होते हैं। जिनके आधार विषम होते हैं। फूल बैंगनी रंग के होते हैं तथा कक्षवर्ती झूलते गुच्छों में होते हैं।

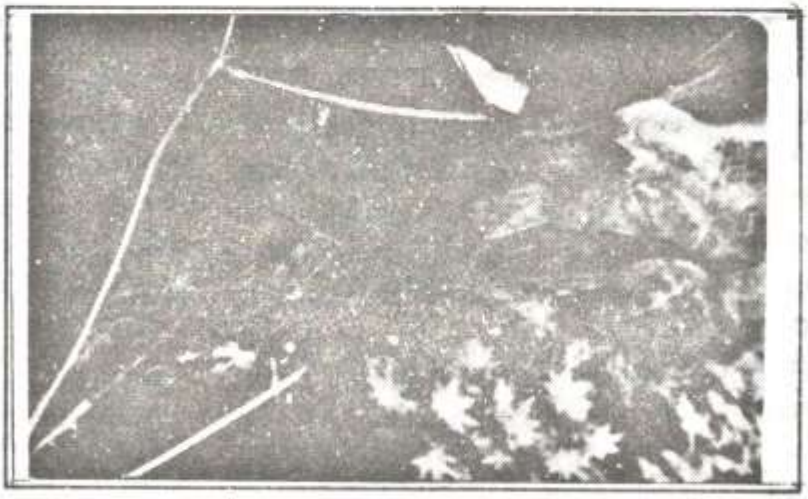

भाषावार नाम : संस्कृत – कपिकच्छु, आत्मगुप्ता, वृष्या; हिन्दी – किवांच, कौंच, केवांच; बंगला – आलकुसी; मराठी – खजखुल्ली, कुहिली; गुजराती – किवांच; तेलुगु – पिल्लियडुगु; तमिल – पूनैक्कलि; कन्नड – नायिचोणिगे; मलयालम – नायिकुरुम।

केवांच मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य एवं त्रिदोषशामक है।

रासायनिक संगठन : केवांच में पानी – ९ से १०%, प्रोटीन – २५.०३%, सत – २.९६%, रेशा – ६.७५%, खनिज पदार्थ – ०.१६%, फॉस्फोरस – ०.४७%, लोहा – ०.२%, सल्फर, मैगनीज तथा अनेक अन्य ऐल्केलायड ०.५३% पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

चरक ने कपिकच्छु को 'शुक्रजनकंपर्वताकारें कहा है। जिससे उसकी शुक्रोत्पादकता और पुंसत्व वर्द्धकता का बोध होता है। हाल के अध्ययनों से उसमें "डोपा" नामक पदार्थ की उपस्थिति का पता चला है जो जैवसक्रिय यौगिकों के जीवसंश्लेषण का अग्रदूत है। यह पदार्थ तंत्रिका तंत्र के नियमन के लिए महत्वपूर्ण है। अतः कतिपय तंत्रिका विकृतियों में कपिकच्छु का प्रयोग लाभकर होता है।

कपिकच्छु में भ्रांतिजनक गुण भी पाया जाता है। कपिकच्छु के भ्रांतिजनक पदार्थ मनःस्थिति को ऊँचे उठाकर आनन्द की वृद्धि करके लैंगिक आकर्षण एवं कामलिप्सा की वृद्धि करते हैं। केवांच की फलियाँ कृमिनाशक एवं बलप्रद हैं। पत्तियों का काढ़ा मूत्रवर्द्धक है और मूत्रकृच्छ तथा अन्य मूत्र-विकारों में उपयोगी है। इसके रोएँ कृमिघ्न हैं। यूरोप वाले भी पहले इसका प्रयोग करते थे यद्यपि अब वे इसका प्रयोग नहीं करते। रोम के बने लेप से स्थानिक उत्तेजना होती है।

अमृत बेल – गिलोय

हकीम मुहम्मद एहसानुल्लाह,
एवं हकीम गयासुद्दीन नदवी, लखनऊ

गिलोय एक प्रसिद्ध बेलदार बूटी है जो हर मौसम में हरी–भरी रहती है। यह एक गूदेदार लता है जो अपने आस–पास के बड़े पेड़ों पर फैलती जाती है। इसमें पान के समान हरे पत्ते निकलते हैं परन्तु वे पान की तुलना में नर्म होते हैं। इसमें पीले रंग के फूल गुच्छों में निकलते हैं जिन में मटर के बराबर फल लगते हैं जो पक कर लाल हो जाते हैं। तना गूदेदार और हरे रंग का होता है जिस पर एक कोमल झिल्ली जैसा सफेद छिलका होता है। इस बेल का प्रत्येक भाग कड़वा होता है। औषध के रूप में यद्यपि इसके समस्त भाग प्रयोग किये जाते हैं अपितु तने एवं पत्तों का इस्तेमाल विशेषकर होता है। यूनानी मत से भी यह अत्यन्त महत्वपूर्ण द्रव्य है। इसकी विशेषता गर्म एवं खुश्क पौधे के रूप में जानी जाती है। इसका प्रयोग अकेले या अन्य द्रव्यों के साथ जोशांदा के तौर पर यूनानी चिकित्सा पद्धति में बहुत व्यापक रूप में होता है। इसके अतिरिक्त इसके अनेक औषधीय योग बनाये जाते हैं और इसका सत्व भी निकाला जाता है जो "सत–गिलोय" कहलाता है। नीम के पेड़ों पर चढ़ने वाली गिलोय सर्वोत्तम मानी जाती है।

भाषावार नाम : हिन्दी – गिलोय, गुडुचि; संस्कृत – गुडुचि, अमृता, ज्वरारी; मराठी – गुलबेल; गुजराती – गलो; तेलगु – तिप्पतिगे; मलयालम – पैटूममृतम, चिट्टामृतम; कन्नड़ – अमर दवलिल; लैटिन – *टिनोसपरा कार्डीफोलिया।*

विशेषताएँ एवं उपयोग

गिलोय विशेषकर एक ज्वर नाशक औषधि है, इसी विशेषता के कारण इसको हिन्दुस्तानी कुनीन कहते हैं। यह उच्चकोटि की रक्तशोधक भी है और पेट के कीड़े मारने में भी लाभकारी है। यकृत पर अच्छे प्रभाव डालने वाली है। इसके सेवन से भूख बढ़ती है।

अमृत बेल या गिलोय **ज्वरों** में लाभदायक है। नजला–जुकाम के साथ यदि बुखार भी हो तो जोशांदे के नुस्खे में २५ ग्राम गिलोय कुचल कर मिलाने पर जोशांदे का प्रयोग किया जाए तो अच्छा लाभ होता है।

सामान्य ज्वरों के लिए २५ ग्राम गिलोय कुचल कर रात्रि में एक बर्तन में भिगो दें और प्रातःकाल उबाल कर छान कर उसमें दो चम्मच चीनी मिलाकर पी लें। यदि ज्वर पुराना है और ज्वर के कारण यकृत एवं आमाशय प्रभावित हों तो गिलोय के साथ ५ ग्राम देशी अजवायन भी मिला लें।

पीलिया रोग हो या आमाशय में जलन मालूम पड़ती हो तो गिलोय की ताज़ा पत्तियाँ २० ग्राम कुचल कर सुबह शाम सेवन करें।

कामला रोग में गिलोय का जोशांदा अंगूर के रस के साथ पिलाना भी गुणकारी होता है।

मधुमेह में गिलोय को सुखाकर इसका चूर्ण बना लें और ५ – १० ग्राम सुबह–शाम सेवन करें तो मधुमेह ठीक होता है।

मधुमेह में इसका सेवन इस प्रकार से भी लाभकारी होता है कि गिलोय का ताजा रस ५ मिलिलीटर (एक चाय का चम्मच) ताजा आँवले का रस एक चम्मच तथा शहद ५ मिलिलीटर, तीनों को मिलाकर सुबह–शाम कुछ दिन तक बराबर पियें।

सूजाक के रोगियों को गिलोय के रस में पाषाण भेद की जड़ का रस और शहद मिलाकर चटाने से लाभ होता है।

औरतों का एक कष्टदायक रोग **श्वेत प्रदर** है। कहते हैं इसमें भी गिलोय अत्यन्त लाभप्रद है – या तो केवल गिलोय का ताजा रस या उसका जोशांदा सेवन किया जाय या सतावर का चूर्ण ५–७ ग्राम की मात्रा में पहले खाकर ऊपर से गिलोय का जोशांदा या रस पी लें।

गठिया में गिलोय का रस अथवा जोशांदा (क्वाथ) के साथ सोंठ का चूर्ण १–२ ग्राम की मात्रा में खाने से लाभ होता है।

ब्राह्मी बूटी के साथ गिलोय का जोशांदा पिलाने से दिल की धड़कनों की बीमारी तथा पागलपन में भी लाभ होता है।

गिलोय और सोंठ के चूर्ण को सुंघाने से हिचकी बंद हो जाती है और इसको खिलाने से हाजमे की कमजोरी दूर होती है तथा भूख खूब लगती है।

सत गिलोय आधा या एक ग्राम की मात्रा में शहद के साथ खिलाने से मुँह के छालों, पाण्डु रोग (रक्ताल्पता) तथा सिर के दर्द एवं

चक्कर आने में लाभकारी है। केवल गिलोय के रस का सेवन करने से दाद, खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी आदि रोगों में लाभ होता है तथा इससे पेट के कीड़े भी मर जाते हैं।

यदि कभी आँख में चूना पड़ जाए तो साफ पानी से आँख धोकर बाद में गिलोय का पानी या उसका सत आँखों में डालना लाभकारी होता है।

गिलोय की प्रजातियाँ

ह.प्र.शर्मा

टीनोस्पोरागण जो कि मैनिस्परमैसी वंश में आता है उसकी कई जातियाँ होती हैं। यह प्रायः उष्ण कटिबन्ध और अधः उष्ण कटिबन्ध के देशों में पाया जाता है। भारतवर्ष के दक्षिण के प्रान्तों में टीनोस्पोरा कारडीफोलिया के साथ एक दूसरी जाति का पौधा टी.मैलाबैरिका गिलोय की तरह प्रयोग में लाया जाता है। यह दोनों जातियाँ बर्मा, थाइलैंड और श्रीलंका में पुरानी पद्धति से बनाई जाने वाली औषधियों में प्रयोग की जाती है। टी.साइनेनसाइ और टी.सैगीटाटा चीन की पुरानी चिकित्सा पद्धति में समान रूप से उपयोगी हैं। यह दोनों जातियाँ मलेशिया, सिंगापुर और ब्रूनी की स्थानीय औषधियों में भी प्रयोग में लाई जाती हैं। इस प्रकार इस गण के पौधों का औषधि के रूप में उपयोग है।

अगले अंक के आकर्षण

बवासीर की रोकथाम और सरल उपचार

मासिक धर्म और शरीर की रक्षा

विष ही खाना है तो अंडे खाइए

प्रकुपित वात दोष की पहचान

पंचकर्म की चिकित्सा

अनेक पौष्टिक आहार एवं औषधि द्रव्यों पर जानकारी सहित सभी स्थायी स्तंभ

जीवनीय में विज्ञापन देकर अपना संदेश हजारों पाठकों तक पहुंचाइए।

कृपया अपना आर्डर व विज्ञापन सामग्री (रंगीन / काला-सफेद चित्र / आर्ट पूल / ब्रोमाइड / निगेटिव आदि) निम्नलिखित पते पर भेजें।

जीवनीय प्रकाशन:
ई-III/२५०, सेक्टर एच,
अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०.

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	छमाही	वार्षिक
पिछला आवरण (रंगीन)	5,000	12,000	20,000
अंदरूनी आवरण (रंगीन)	4,000	10,000	18,000
अंदर के पृष्ठ	2,000	5,000	9,000
अंदर का आधा पृष्ठ	1,000	3,000	5,000

संतरा

वैद्य र.म. नानल, बम्बई
एवं वैद्य भा.वि. साठये, नागपुर

पिछले ५०–६० वर्षों से विदर्भ के विशाल भूभाग के बागानों में संतरे की खेती की जा रही है। उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों में इसके बाग लग जाते हैं। नींबू के वृक्ष के आकार–प्रकार का इसका वृक्ष पानी और तेज़ धूप पाकर पनपता है।

भाषावार नाम : हिन्दी – संतरा; संस्कृत – नागरंग; मराठी – संत्रे, नारिंग; गुजराती – नारंगी; बंगला – नारेंगा, नारुगि; कन्नड़ – कित्तले हण्णु; अंग्रेज़ी – ऑरेंज; लैटिन – *सिट्रस आउरियांटम।*

बड़ी और मीठी नारंगी एक अत्यन्त स्वादिष्ट मेवा है। यह आकार में सेब के बराबर और लाली लिए हुए पीले रंग का होता है। इसके गुणधर्म और रंग से स्पष्ट होता है कि इसका निर्माण जल और अग्नि महाभूतों के अधिकांश से हुआ है और पृथ्वी आदि अन्य महाभूत घटकों के अंग इसमें अपेक्षाकृत कम हैं। फलतः इसके सेवन से ठोस खुराक या पोषण अधिक प्राप्त नहीं होता। किंतु अग्नि और जल की अधिकता से उत्पन्न होने के कारण थके–मांदे या रुग्ण व्यक्ति को स्फूर्ति प्रदान करने और पाचन प्रणाली का सुधार करने में यह बेजोड़ है।

संतरे या नारंगी का रस किसी भी उम्र के व्यक्ति को दिया जा सकता है, लेकिन अन्य फलों के समान लोग इसका सेवन नियमित रूप से नहीं करते। सम्भवतः इसका कारण यह है कि इसे रोगियों का फल मानते हैं।

औषधीय उपयोग

इसका रस सद्यः तर्पण है, यानी तुरंत तृप्ति और उत्साह प्रदान करने वाला है। शरीर के पोषण करने वाले रस नामक धातु को यह तृप्त करता है। इसलिए व्यायाम या शारीरिक श्रम करने वालों और खिलाड़ियों को इसका नित्य सेवन करना चाहिए।

> हृदय रोग की वात प्रधान अवस्था में छाती के धड़धड़ाने, दर्द और जकड़न होने पर एक गिलास संतरे के रस में एक बड़ा चम्मच शहद मिलाकर लें। इससे पेट की गैस कम होगी, पेशाब साफ होगा और शहद के कारण स्नायुओं को बल मिलेगा।

नारंगी के रस में चुटकी भर सेंधा नमक मिलाकर लेने से अधिक लाभ होता है। इससे रक्त में मौजूद अम्लता कम होती है, जिससे थकान की अनुभूति मिटती है। अधिक पसीना निकल जाने से शरीर में जो जलांश की कमी होती है और थकान का अनुभव होता है उसके निराकरण के लिए सेंधा नमक से युक्त संतरे का रस रामबाण है। लेकिन एक बात ध्यान में रहे कि संतरे के रस में चीनी या बर्फ न डालें वरना रस का गुण कम हो जाएगा।

पाचन क्रिया की गड़बड़ी में संतरे का १० से ४० मि.ली. रस दिन में तीन या चार बार देना चाहिए।

इसके छिलके का उबटन रंगत निखारता है और झाइयाँ आदि दूर कर देता है।

जिन्हें कब्ज़ की शिकायत हो, वे नित्य रात के भोजन के घण्टे दो घण्टे के बाद दो–तीन बड़े और मीठे संतरे खाकर कब्ज़ से मुक्त हो सकते हैं।

अत्यधिक श्रम या व्यायाम के कारण कमजोरी आने पर संतरे के रस में नींबू या आँवले का रस व सेंधा नमक मिलाकर लें।

गर्भवती महिलाएँ यदि रोज़ एक मीठा संतरा धीरे–धीरे एक–एक फाँक खाएँ और छिलका थूक दें तो उल्टी, मतली आदि शिकायतों से बची रह सकती हैं।

संतरे के रस में नारियल का पानी मिलाकर पीने से शरीरस्थ विषैले द्रव्य मूत्रमार्ग से निकल जाते हैं।

विषम ज्वर और टी.बी. के मरीजों को संतरे का रस देने से उनके शरीर के विषैले द्रव्य मूत्रमार्ग से निकल जाते हैं। रोगी को उत्साह का अनुभव होता है और दवा फायदा करने लगती है।

हृदय रोग की वात प्रधान अवस्था में छाती के धड़धड़ाने, दर्द और जकड़न होने पर एक गिलास संतरे के रस में एक बड़ा चम्मच शहद मिलाकर लें। इससे पेट की गैस कम होगी, पेशाब साफ होगा और शहद के कारण स्नायुओं को बल मिलेगा।

उड़द की दाल

प्रोटीन का भण्डार

वैद्य वाचस्पति त्रिवेदी, लखनऊ

माष को सामान्य बोलचार की भाषा में उड़द कहा जाता है। उड़द की फली से काले अथवा हरे रंग के दाने प्राप्त होते हैं। प्रायः पूरे भारत में उड़द की खेती होती है। स्वाद की दृष्टि से काली उड़द अधिक स्वादिष्ट होती है अतः स्वाभाविक रूप से काली उड़द की खेती अधिक की जाती है। शरद ऋतु के मध्य में उड़द की खेती तैयार हो जाती है अतः जाड़ों में इसकी नयी दाल बाज़ार में मिलती है।

भाषावार नाम : हिन्दी– उड़द; पंजाबी– मांह; मराठी– उड़ीद; गुजराती– अड़; बंगला– माष कलाय; कन्नड़– उद्द; अंग्रेज़ी– ब्लेक ग्राम; लैटिन– *विगिता मुंगो।*

उड़द को औषधि रूप में कम किन्तु भोज्य पदार्थ के रूप में अधिक उपयोग करते हैं क्योंकि इसमें पाये जाने वाले रासायनिक घटकों में सर्वाधिक मात्रा प्रोटीन की होती है जो कि भोजन का एक आवश्यक अंग है। कार्बोहाइड्रेट भी पर्याप्त मात्रा में (५५–५९.६% तक) पाया जाता है। उड़द में वसा, खनिज द्रव्य (कैल्शियम, फॉस्फोरस, लौह, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, ताम्र एवं गन्धक) विटामिन 'ए' 'बी', किण्व तत्व तथा स्किर तेल की उपस्थिति इसकी निर्विवाद उपादेयता एवं पौष्टिकता का आधार है। यह दाल अत्यन्त बलकारी एवं शरीर में मांस धातु की वृद्धि करने वाली मानी जाती है। मधुर रस एवं कार्बोहाइड्रेट सम्पन्न होने के कारण 'उड़द' कफ़ की वृद्धि करता है।

वास्तव में इसका प्रोटीन मांस के प्रोटीन से साम्यता रखता है अतः क्षीणकाय व्यक्ति की भूख एवं पाचन शक्ति सामान्य होने पर उड़द के सेवन से वह शीघ्र स्वस्थ होता है तथा उसके वजन में वृद्धि होती है।

रासायनिक संगठन की विशेषता के कारण उड़द में वातनाशक गुण पाया जाता है क्योंकि ये स्निग्ध एवं उष्णवीर्य पदार्थ है अतः वातनाशक गुण के कारण हड्डियों में पीड़ा, निद्रानाश आदि अवस्थाओं में यह लाभकारी है। आयुर्वेद में इसका वर्णन अनेक रोगों के नाशक द्रव्य के रूप में किया गया है परन्तु इसका औषधि प्रयोग प्रायः कम ही होता है।

उड़द की खीर

जाड़ों में उड़द की खीर न केवल युवा एवं प्रौढ़ पुरुषों के लिए शक्ति वर्धक (सामान्य एवं पुंसत्व) है वरन महिलाओं एवं बालकों के लिए भी पुष्टिकारक है। व्यक्ति की अपनी पाचन शक्ति के अनुरूप इसकी सेवन की मात्रा निर्धारित की जा सकती है।

निर्माण विधि : उड़द की धुली दाल को साफ करके, धोकर सुखा लें। गाय के शुद्ध घी में लाल होने तक मन्द–मन्द आँच पर भूनें। दाल के भुन जाने पर दाल लगभग २० गुना दूध मिलाकर (५० ग्राम दाल में १ लीटर दूध) पकाएँ। मन्द–मन्द आँच पर पकने व दाल के गल जाने पर लगभग चौथाई दूध शेष रहने पर उतार लें। स्वाद एवं आवश्यकतानुसार चीनी मिलाएँ। इसमें घिसी हुई गोला–गरी, मखाने, किशमिश, चिरौंजी तथा छुहारा आदि मेवे मिलाने पर स्वाद एवं गुणों में अधिक वृद्धि हो जाती है।

उड़द के औषधीय गुण

वैद्य रमेश नानल, बम्बई

प्रसूति के बाद स्तनों में दूध बढ़ानें के लिये २ चम्मच उड़द का आटा, २ चम्मच घी में गरम कर लें। तत्पश्चात मिश्री या पुराना गुड़ १ चम्मच मिलाकर खाएँ और उसके बाद गरम दूध लें, रोज़ एक बार भोजन के बाद यह प्रयोग करना आवश्यक है। स्तनपान

कराने के पश्चात माँ के स्तनों में यदि पीड़ा होती हो तो उड़द का आटा पानी में मिलाकर गरम करें और उसका गुनगुना गरम लेप स्तनों पर करें और आधे घण्टे बाद गुनगुने गरम पानी से उसे धोकर पोंछ लें।

हेमन्त एवं शिशिर में उड़द के लड्डू, खीर आदि बनाकर खाने से शरीर पुष्ट होता है। इन दो ऋतुओं में शरीर की पाचन शक्ति उत्तम श्रेणी की होती है इसलिए उड़द के सेवन के लिए यह काल अति उत्तम है।

शुक्र नामक शरीर धातु यदि क्षीण या दुर्बल हो जाए तो अनुत्साह, कमर दर्द, टाँगों में दर्द, मैथुन की इच्छा कम होना, मैथुन के बाद थकावट एवं पश्चाताप की भावना का निर्माण होना इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसी अवस्था में उड़द, दूध, गुड़, इलायची, केसर – इनकी खीर बनाकर नियमित रूप से भोजन के साथ खाएँ अथवा उड़द के बड़े बनाकर दही के साथ चीनी मिलाकर खाएँ। यह उपक्रम ३ से १२ सप्ताह कर करें।

शुक्र की क्षीणता के कारण धातुओं का निर्माण क्षीण हो जाता है और शरीर में रूखापन प्रतीत होता है। इसकी उपेक्षा करने से टी.बी. जैसे विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए उड़द के बड़ों को घी में पकाकर मधु के साथ खाएँ, साथ में गुनगुने दूध का प्रयोग करें।

नियमित रूप से व्यायाम करने वाले व्यक्तियों को उड़द के आटे एवं इमली के बीज की रोटी बनाकर खानी चाहिए। इससे शरीर पुष्ट एवं सुदृढ़ होता है।

अधिक प्रमाण में मल प्रवृत्ति (दस्त) होने से पेट में अफारा, पसलियों में दर्द, सीने में दर्द, दुर्बलता आदि प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में साबुत उड़द का प्रयोग करें। गेहूँ की रोटी, दही, राजमा के साथ उड़द खाने से अवश्य लाभ होगा।

अर्धांग वायु (लकवा) के बाद बोली में कुछ विकृति आने पर १ चम्मच उड़द की दाल १ गिलास पानी में उबाल कर चौथाई करें, और हथेली में लेकर नाक द्वारा पियें। यह कार्यक्रम करने के बाद एक मिनट तक लम्बी साँस लें। ३ से १२ सप्ताह तक यह प्रयोग उचित है।

उड़द १०० ग्राम, सेंधा नमक १०० ग्राम, पानी ३ लीटर – इन्हें उबालकर काढ़ा बनाएँ ३/४ लीटर शेष रहने पर उसमें २ लीटर तिल का तेल मिलाकर तब तक उबालें जब तक केवल तेल शेष रह जाए। इसे शीशी में भरकर रखें। यह माष सैंधव तेल है।

माष सैंधव तेल का उपयोग : अधिक मेहनत के कारण होने वाली शारीरिक पीड़ा, स्नायु दौर्बल्य में मालिश के लिए अति उत्तम है।

आधे शरीर के लकवे में विशेषतया मांस पेशियों का संकोच होता है तब इसे गरम करके मालिश करें।

अधिक लिखने वालों के हाथ की मांसपेशियों में दर्द व कांपने के लिए इसकी मालिश ३ से ४ ऋतु (छः माह) तक करें और नाक द्वारा पियें काफी हद तक लाभ होता है।

नित्य व्यायाम करनें वालों को इसकी मालिश नियमित रूप से करनी चाहिए। इससे शरीर पुष्ट, बलिष्ठ एवं मन प्रसन्न रहता है।

जब मल की गाँठें बनती हैं, पेट में अफारा व दर्द होता है तब यह तेल पेट पर मालिश करने के लिए प्रयुक्त करें। इसी को ४ से १० चम्मच तक के प्रमाण में गुनगुने पानी के साथ पियें। एक मात्रा से लाभ न होने पर वैद्य की सलाह लें।

निषेध : निम्न् स्थितियों में उड़द का प्रयोग न करें –

- पाचन शक्ति अति दुर्बल होने पर
- अतिसार की अवस्था में
- पेट की जलन वाली अवस्था में
- साँस के विकारों में और
- वसन्त ऋतु में

भोजन के बाद टहलने के गुण

"भुक्तत, शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते।

अन्नसंघातशैथिल्यं ग्रीवाजानुकटीषु च।"

भाव प्रकाश ५/ १९७

भोजन करने के बाद धीरे–धीरे सौ कदम तक टहलना चाहिये। ऐसा करने भोजन पेट में सुव्यवस्थित होता है एवं गर्दन, घुटने व कमर को सुख पहुंचाता है।

पालक

डॉ. राकेश रवि द्विवेदी, शाहजहाँपुर

यह शाक वर्ग एवं वास्तूक कुल का वर्ष जीवी छोटा पौधा है। हम सभी के घरों में इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने में होता है जैसे– पालक–पनीर, पालक–पकौड़ा, मूँग की दाल–पालक, पालक का रायता आदि और ये सभी स्वादिष्ट व गुणकारी होते हैं। सब्ज़ी के लिए इसके पत्तों का ही प्रयोग होता है। पत्ते जितने काटे जाते हैं, शीघ्र बढ़कर नये आ जाते हैं। बीजों का औषधि रूप में प्रयोग होता है। यकृत रोगों, खून की कमी, पीलिया में इसके सेवन से बहुत लाभ होता है।

भाषावार नाम: संस्कृत – पालक्य, सुपत्रा; गुजराती – पालखानी भाजी, टांको; मराठी – पालख; अंग्रेज़ी – स्पाइनेज; लैटिन – *स्पाइनेसिया ओलीवेसिया।*

इसमें जल ९३%, खनिज पदार्थ १.८%, प्रोटीन १%, कार्बोहाइड्रेट ३.८%, लोहा ५ मि.ग्रा., कैल्शियम १%, विटामिन ए. ३००० आइ.यू., विटामिन बी. ७० आइ.यू., विटामिन सी. ३ मि.ग्रा. प्रति १०० ग्राम होता है। इसमें तंतु एवं क्षार का भाग अधिक होता है।

औषधीय गुण व प्रयोग

पालक शीतवीर्य, मलमेदक, दाहशामक, मूत्रल व शोथनाशक है। रक्ताल्पता, कामला, उदरभुट्टि एवं आमविकार में इसका विशेष प्रयोग होता है। वात एवं कफ व्याधि वाले रोगियों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए। पालक को चना, अरहर, मूँग आदि दालों या गोभी, टमाटर आदि शाकों के साथ मिलाकर खाने से इसमें पाये जाने वाले उच्चकोटि के प्रोटीन एवं विटामिन ए., बी. व शाकों के कम उपयोगी प्रोटीनों का शरीर में उत्तम पाचन होता है। सलाद के रूप में इसका प्रयोग बहुत लाभकारी होता है।

इसके पत्तों का १ कप रस पीने से कब्ज़ दूर होता है। गले की जलन में इसके पत्तों के रस से कुल्ला करते हैं। गाँठ या सूजन पर इसके पत्तों के साथ सहजन के पत्तों को उबालकर पुल्टिस जैसा बाँधने पर लाभ होता है।

इसमें विटामिन ए, बी तथा लौह अधिकता से पाया जाता है इसलिए इसका प्रयोग खून की कमी, पीलिया, एवं यकृत संबंधी सभी रोगों में अत्यन्त लाभकारी होता है।

इसके पत्तों का १ कप रस पीने से कब्ज़ दूर होता है। गले की जलन में इसके पत्तों के रस से कुल्ला करते हैं। गाँठ या सूजन पर इसके पत्तों के साथ सहजन के पत्तों को उबालकर पुल्टिस जैसा बाँधने पर लाभ होता है।

बीज: इसके बीज चौकोणाकार, खुरदुरे होते हैं। बीज शीतल, स्निग्ध, तापहर होते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो आमकृमि में लाभकारी है। इसके तेल की २१ बूँदें एक कैप्सूल में भरकर प्रातः लेकर, ३ घण्टे बाद रेचक औषधि देते हैं जिससे कि तेलीय अंश आँतों में से निकल जाय। इस प्रयोग से सभी प्रकार के आम कृमि निकल जाते हैं। लेकिन इसका प्रयोग बारबार नहीं करना चाहिए, आवश्कता होने पर एक माह के अंतराल से पुनः प्रयोग किया जा सकता है।

विशेष : इसके ताज़े पत्तों के स्वरस को १५० डिग्री सेन्टीग्रेट के ताप तक गर्म करके सुखा लेते हैं। इसे वभहरित कहते हैं। १ ग्राम वभहरित को १०० ग्राम वैसलीन में भली प्रकार घोटने पर मलहम बन जाता है। ये फोड़ा, फुन्सी, जख्म में बहुत लाभ करता है।

यूनानी मतानुसार पालक पहले दर्ज़े में तर व सर्द होता है। प्यास, मेदे की जलन, पेशाब की जलन को शांत करता है। खून को साफ करता है। कब्ज़ दूर करता है। बर्र के डंक पर पत्तों की लुगदी बाँधने से आराम मिलता है।

काजू

सूखे मेवे में काजू का अपना एक विशिष्ट स्थान है। क्योंकि यह अन्य सूखे मेवों बादाम, अखरोट, चिलगोज़ा, पिस्ता आदि की तरह वातशामक तो है किन्तु कफवर्धक नहीं। अत्याधिक पौष्टिकता भी इसके महत्व को बढ़ाती है। वृद्ध लोगों के लिए यह बहुत ही उपयुक्त मेवा है क्योंकि यह वात और कफ शामक है। बुढ़ापे में शरीर में वात की स्वाभाविक रूप से वृद्धि व प्रकोप होता है। शरीर की गरमी (पित्त) कम होने लगती है फलस्वरूप शरीर में कफ बढ़ने की प्रवृत्ति आरम्भ हो जाती है। यदि वृद्ध व्यक्ति कफज प्रकृति का है तो रक्त में कोलेस्ट्रॉल बढ़ने की सम्भावना बढ़ जाती है। अतः वृद्धावस्था का आहार वात, कफ शामक और पित्त को बढ़ाने वाला अर्थात पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला होना चाहिए। यह सभी गुण काजू में मौजूद हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी – काजू या काजू बादाम; फारसी – वादामे; सस्कृत – काजूत; बंगाली – काजू बादाम; मेवाड़ – काजू कुली; अंग्रेज़ी – केश्यू नट; लेटिन – *एनाकर्डियम ऑक्सीडेन्टेलिस।*

काजू एक विदेशी वृक्ष के फल की गिरी है। यह विदेशियों द्वारा हमारे देश में कई सौ साल पहले लाया गया था। इसके वृक्ष दक्षिण भारत में मद्रास, बम्बई, केरल, उड़ीसा, मालाबार, पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में, समुद्र के किनारे के जंगलों में पाये जाते हैं। इसका फल काजू सेब कहलाता है जो गुर्दे के आकार का हरित पीलापन या भूरापन लिये लाल या धूसर वर्ण का होता है। यह फल एक इंच लम्बा और आधा इंच मोटा होता है। इसका वृक्ष १० से २० फीट ऊँचा एवं फैलाव लिये होता है। फल के गूदे को हटाने पर गुठली निकलती है, गुठली का छिलका हटाने पर अन्दर गुर्दे के ही आकार की गिरी (मगज़) निकलती है जिसे काजू या काजू बादाम कहा जाता है। पौष्टिकता और स्वाद में यह बादाम के समान होता है इसी कारण इसको काजू बादाम कहते हैं।

काजू की गिरी का रासायनिक संगठन : ४१.६% पीला तेल, प्रोटीन ३१.२%, शर्करा २२.३%, चूना ०.५%, फॉस्फोरस ०.४५%, लोहा ५मि.ग्रा., १०० ग्राम काजू में १०० मि.ग्रा. विटामिन ए, विटामिन बी.१, ६३० मि.ग्रा., नियासिन २.९% तथा राइबोफ्लैविन १९० मि.ग्रा. पाया जाता है।जिसको बुढ़ापा निरोधक कहा जाता है।

औषधीय गुण

काजू गरम और तर अर्थात वात, कफ शामक, पित्त बढ़ानेवाला होता है।

आयुर्वेद शास्त्रानुसार : काजू कसैले रस वाला, विपाक में मधुर, उष्ण वीर्य (गरम), लघु, धातुवर्धक, वात, कफ को शान्त करने वाला, पाचकाग्नि को बढ़ाने वाला, पेट के रोग जैसे– संग्रहणी, गुल्म, कीड़े, अफरा को दूर करने वाला होता है। बवासीर (बादी व कफज), और श्वेत कुष्ठ में भी यह हितकारी है।

एस.ए.खान, आयुर्वेदाचार्य, लखनऊ

वातज और कफज : ठण्डी प्रकृति वालों के लिये काजू बहुत उपयोगी है।

औषधीय उपयोग

– जिन्हें दिमागी कमजोरी हो, भूलने की प्रवृत्ति बढ़ रही हो, या नींद कम आती हो उन्हें प्रातः और सायं काजू का निरन्तर सेवन करना चाहिए। इससे मस्तिष्क को बल मिलेगा, नींद सही आयेगी और शक्ति बढ़ेगी।

– जिन्हें अत्यधिक दुर्बलता आ गई हो और हाजमा सही नहीं रहता या संग्रहणी का रोग रहता है उन्हें काजू की गिरी या काजू का तेल प्रयोग करना चाहिए।

– जिन्हें लगातार बिवन्ध (कब्ज़) रहता है और वे दवा के आदी नहीं होना चाहते उन्हें रोज़ शाम को १ तोला काजू उतनी ही किशमिश या मुनक्का के साथ गरम जल से रात को सोने से पहले लेना चाहिए।

– जिन लोगों को गैस अधिक बनती है बिवन्ध भी रहता है या वात व्याधि से पीड़ित हैं परन्तु वे रेण्डी का तेल उसकी गन्ध के कारण नहीं ले पाते उन्हें काजू का तेल रोज़ शाम को लहसुन कल्क (चटनी), मुनक्का या मुलैठी चूर्ण या अकेले ही लेना चाहिए।

शेष पृष्ठ ५२ पर

गुणकारी शहद

वै. उमेश चन्द्र शर्मा

विज्ञान की भाषा यदि प्रयोग की जाए तो यह कहा जा सकता है कि वास्तविक मीठा स्वाद इसमें निहित द्राक्षा-शर्करा और फलश-शर्करा में होता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, किण्वक (एन्ज़ाइम), खनिज, विटामिन्स भी होते हैं।

शहद सबसे अधिक और जल्दी ऊष्मा प्रदान करने वाला खाद्य पदार्थ है। इसकी ऊष्मांक की जब दूसरे खाद्य पदार्थों से तुलना की जाती है तब निम्न तथ्य सामने आते हैं –

१ किलो शहद प्रदान करता है ३१५० से ३३५० ऊष्मांक	१ किलो मछली प्रदान करती है ६२० ऊष्मांक
१ लीटर दूध प्रदान करता है ६२० ऊष्मांक	१ किलो सेब प्रदान करता है ४०० ऊष्मांक
१ किलो आटे की रोटी प्रदान करती है २०४० ऊष्मांक	१ किलो सन्तरा प्रदान करता है २३० ऊष्मांक
१ किलो कुकुरमुत्ता प्रदान करता है २७० ऊष्मांक	

शहद एक ऐसा उपयोगी पदार्थ है जिसको आयुर्वेद में आहार के साथ-साथ औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाता है और ऐसा माना जाता है कि औषधि अगर शहद के साथ ली जाए तो अधिक लाभप्रद होती है। इसको दूध के साथ लेने पर शरीर में बल की वृद्धि होती है तथा गुनगुने जल के साथ शहद लेने से शरीर की स्थूलता (मोटापा) कम होती है तथा वज़न घटता है। जल जाने पर शहद का उपयोग प्राथमिक उपचार के लिए किया जाता है। कुछ चिकित्सकों का विश्वास है कि मधुमेह रोग में शहद का सेवन करने से भी रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। हम इस लेख में शहद के निर्माण, भेद, गुण, दोष व उपयोगिता आदि पर विस्तार से जानकारी दे रहे हैं।

शहद क्या है?

वस्तुतः तो शहद मधुमक्खियों द्वारा तैयार किया गया पदार्थ है परन्तु इसकी उत्पत्ति फूलों से ही होती है। फूलों में से एक मधुर रस का स्राव होता है जिसकी सुगन्ध से मधुमक्खियाँ फूलों की तरफ आकर्षित होती हैं और फूल से उस मधुर पदार्थ को अपने शरीर में एकत्र कर लेती हैं। इस मधुर पदार्थ का मधुमक्खी के शरीर के अन्दर कुछ रासायनिक परिवर्तन होकर अन्त में शहद का निर्माण होता है। शहद एकत्र करने के आधार पर इसे दो तरह का बताया जा सकता है। एक शहद जिसको गाँव में किसान एकत्रित करते हैं और दूसरा प्रकार है मिश्र शहद।

शहद के भेद

साधारतः लोग जानते हैं कि शहद केवल एक ही प्रकार का है जबकि आयुर्वेद के आचार्यों का कहना है कि गुण व दोषों के दृष्टिकोण से शहद आठ प्रकार का होता है क्योंकि शहद को एकत्र करने वाली मधुमक्खियों की आठ जातियाँ होती हैं जो एक प्रकार के फूल से शहद को एकत्र नहीं करतीं अपितु विभिन्न प्रकार के फूलों से शहद एकत्र करती हैं जिस कारण शहद के गुणों में भी अन्तर देखने को मिलता है। इन गुणों में आपस में कुछ ही विभिन्नता रहती है। शहद के निम्न आठ प्रकार है –

(१) माक्षिक, (२) भ्रामर, (३) औद्र, (४) पौत्तिक, (५) छात्र, (६) आर्घ्य, (७) औद्धालक, (८) दाल।

इन आठ प्रकार के शहदों में सबसे अच्छा व गुणों में श्रेष्ठ माक्षिक शहद होता है जिसका रंग तेल के समान होता है।

शहद के सामान्य गुण

आयुर्वेद के आचार्य भावप्रकाश के अनुसार शहद पचने में हल्का, आँखों के लिए लाभकारी, स्वादिष्ट, आवाज़ साफ करने वाला, पाचक रसों का स्राव बढ़ाने वाला, शरीर को कोमल बनाने के सहायक, बुद्धिवर्धक व शुक्र धातु को बढ़ाने वाला होता है। शह कफ व पित्त दोष का शमन करने वाला किन्तु थोड़ा वातजनक होता है। यह खाँसी, साँस फूलना, बवासीर, हिचकी, दस्त, कब्ज़, शरीर में जलन व टी.बी., त्वचा के रोग, मेद वृद्धि (मोटापा) आदि में लाभकारी है। शहद की तासीर ठण्डी होती है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने शहद को योगवाही गुणों वाला बताया है। इसका तात्पर्य है कि शहद को यदि किसी औषधि के साथ लिया जायेगा तो उसके गुणों में वृद्धि हो जायेगी।

नये शहद के गुण: नया शहद शरीर के लिए

पुष्टिकारक, कुछ हद तक कफ दोष का शमन करने वाला होता है। कमजोर शरीर वाले तथा रोगियों को नवीन शहद का प्रयोग करना चाहिए।

पुराने शहद के गुण : वातवर्धक तथा शरीर में रूक्षता लाने वाला, मल बाँधने वाला, शरीर में लघुता, बढ़े हुए मेद (मोटापे) को कम करने वाला होता है। अतः जिन लोगों का शरीर स्थूल हो वे लोग पुराने शहद का प्रयोग करें।

अच्छे शहद की परख करने के लिए शहद की बूँद कागज़ पर डालने से न तो फैलती है और न ही कोई नमी दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त शहद की एक बूँद पानी में डालने से यदि वह बर्तन की सतह को छू लेती है तो शहद शुद्ध होता है। शहद को हमेशा ठण्डे स्थान पर ही रखना चाहिए। पारदर्शक शहद अशुद्ध नहीं होता है।

जो शहद एक साल की आयु का हो जाता है वही पुराना शहद प्रयोग करना चाहए। शहद कब और कैसे प्रयोग करना उचित होगा, इसके लिए भी कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है –

- जिन लोगों को दही अहितकर हो, वे लोग दही के साथ शहद का उपयोग करें क्योंकि शहद दही के अभिबादी गुण को दूर करता है।

- कफ दोष वाले रोग (जैसे– प्रमेह, मधुमेह, खाँसी, जुकाम) तथा पित्त दोष के रोग (जैसे– अम्लपित्त, शरीर में जलन) में जो औषधियाँ ली जाती हैं उनके साथ शहद का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है।

- आयुर्वेद शास्त्र में नवजात शिशु का प्रथम आहार "शहद" बताया गया है। इसके लिए बच्चे को जन्म के पश्चात शहद, घी व शुद्ध स्वर्ण–भस्म, तीनों को मिलाकर १ गुंजा की मात्रा (१ मि.ग्रा.) अनामिका उंगुली पर लेकर चटाएँ, तत्पश्चात ही स्तनपान कराना चाहिए। इसके अलावा शहद व घी असमान मात्रा में दो–तीन दिन तक सेवन कराना चाहिए और जब स्तनों से दूध निकलने लगे तो स्तनपान कराएँ।

विशेष : आयुर्वेद के चिकित्सक वाग्भट्ट का मत है कि शहद को गरम करके नहीं प्रयोग करना चाहिए। जो व्यक्ति गरमी, धूप आदि से पीड़ित हो उसे तुरन्त शहद का सेवन हानिकर होता है। इसके अलावा गरम पदार्थों के साथ शहद को मिलाकर सेवन करना शरीर के लिए हानिकर है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि शहद की तासीर ठण्डी होती है व विभिन्न प्रकार के फूलों से शहद का निर्माण होता है इनमें कुछ विषैले गुण भी वाले होते हैं। अतः कुछ मधुमक्खियाँ भी विषयुक्त होती हैं, अतः सम्भव हो कि शहद में कुछ मात्रा में विष का संसर्ग हो, जो गरम करने पर शरीर के लिए हानिकर साबित हो। परन्तु आयुर्वेद की पंचकर्म चिकित्सा की कुछ विधियों में उष्ण शहद का प्रयोग बताया गया है, जैसे– बस्ति (एनिमा) में, परन्तु इस विधि से दिया गया शहद शरीर में ज्यादा समय तक नहीं टिकता अतः हानिकर नहीं होता।

कुछ विद्वान चिकित्सकों का आपस में मतभेद है कि मधुमेह में शहद का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि शहद में शर्करा का अंश रहने के कारण मधुमेह रोगियों के लिए हानिकर है। इस बारे में स्पष्टीकरण यह है कि मधुमेह के दो प्रकार के रोगी देखने को मिलते हैं (१). स्थूल शरीर वाले तथा (२). दुबले पतले शरीर वाले। चूँकि स्थूल शरीर वाले मधुमेह के रोगी का शरीर दुबला करना होता है व इसमें कफ दोष भी बढ़ा हुआ होता है अतः दोनों अवस्थाओं में शहद का प्रयोग मधुमेह के रोगी के लिए लाभकर है।

जबकि दुबले–पतले शरीर वाले मधुमेह के रोगी को शहद का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इस तरह के रोगियों में वात दोष बढ़ा रहता है व शहद के प्रयोग से वात दोष बढ़ता है जिससे रोग के बढ़ने की सम्भावना रहती है। वैसे यह और अधिक शोध का विषय हो सकता है कि किस प्रकार के मधुमेह के रोगी को शहद का सेवन लाभप्रद अथवा हानिकर है। जहाँ तक लेखक का मत है कि फल–फूलों की शर्करा मधुमेह के रोगियों को ज्यादा हानिकर नहीं है जबकि अन्य किसी भी रूप में चीनी का प्रयोग मधुमेह के रोगी को हानिकर है।

पृष्ठ ५० का शेष

काजू

खाद्य रूप में उपयोग : इसको कच्चा ही या भून कर अथवा तेल या घी में तल कर नमकीन की तरह प्रयोग किया जाता है। या विभिन्न प्रकार की नमकीनों, बिस्कुटों, केक, मिठाइयों में भी इसको डाला जाता है। कई पौष्टिक पाकों में भी उसकी पौष्टिकता बढ़ाने के लिए इसे डाला जाता है।

किसको काजू उपयोग नहीं करना चाहिए : पित्तज प्रकृति (गरम मिजाज) वालों व पित्तज रोगों जैसे– रक्तज बवासीर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, नक्सीर आदि से पीड़ित लोगों को काजू का उपयोग कम करना चाहिए या नहीं करना चाहिए।

पुष्टिकारक व्यंजन

वैद्य बी.पी.जैन, लखनऊ

इस अंक में लेखक ने कुछ ऐसे व्यंजनों की जानकारी दी है जिनका प्रचलन अब कम होता जा रहा है, पर स्वास्थ्य परम्पराओं में उनके महत्व को देखते हुए उनके गुण व निर्माण विधि का यहाँ संक्षिप्त विवरण है।

गोंद के लड्डू

गोंद : यह कई प्रकार के पेड़ों से प्राप्त होता है यथा– बबूल, सहिजन आदि। लड्डू बनाने के लिए बबूल का गोंद ही प्रयोग में आता है। यह बबूल के पेड़ का सूखा निर्यास है तथा बहुत बल्य है। अतः बच्चा पैदा हो जाने के बाद जच्चा में शक्ति लाने के लिए यह अब भी घर–घर में बनाये जाते हैं। आजकल मँहगाई के कारण इसका चलन कम होता जा रहा है अन्यथा पहले घर में बच्चा पैदा होने के पश्चात काफी मात्रा में लड्डू व पँजीरी बनायी जाती थी तथा नाते–रिश्तेदारों में भी बाँटी जाती थी।

लड्डू बनाने की विधि : स्वच्छ सफेद रंग का चमकदार गोंद लें। इसमें लकड़ी का अंश नहीं होना चाहिए। गोंद के महीन टुकड़े करके घी में भूना जाता है साथ में बादाम गिरी, काजू को भी घी में भून कर इमामदस्ते में कूट लिया जाता है तथा आटे को घी में भूनकर उसमें भुना गोंद व मेवा मिलाकर चीनी की चाशनी में डालकर लड्डू बनाये जाते हैं।

जच्चाओं के लिए लड्डू बनाने के लिए उसमें पिसी सोंठ का चूर्ण भी डाला जाता है जिससे यह लड्डू सुपाच्य हो जाते हैं तथा इससे स्त्रियों में बलवर्धन होता है।

तिल के मिष्ठान

तिल : यह दो प्रकार का होता है, सफेद तथा काला। इसमें सफेद ही अधिकतर मिष्ठान बनाने के काम में आता है। तिल की फसल दीवाली के आस–पास अक्टूबर में तैयार होती है तथा इसकी उत्तर–प्रदेश, मध्य–प्रदेश तथा गुजरात में अधिक खेती की जाती हे। तिल का तेल खाद्य तेल तथा मध्य–प्रदेश में प्रचुर मात्रा में खाने के काम आता है। तिल से लगभग ४०% तेल प्राप्त होता है तथा इसकी खली जानवरों को खिलाने के काम में लाते हैं। इससे निम्न मिष्ठान बनाये जाते हैं–

१. तिल के लड्डू, २. तिल बुग्गा,
३. अंदरसे, ४. गजक, ५. रेवड़ी

मिष्ठान बनाने के लिए धुला हुआ तिल ही प्रयोग में लाते हैं –

तिल के लड्डू : मकर सक्रांति पर पर खिचड़ी के अलावा तिल के लड्डू भी दान में दिये जाने की प्रथा है।

इसके लड्डू गुड़ अथवा चीनी से बनाये जाते हैं। बनाने के लिए चीनी अथवा गुड़ की चाशनी बनाई जाती है तथा उसमें भूना हुआ तिल डालकर चला कर ठण्डा कर लड्डू बना

लिए जाते हैं। यह खाने में स्वादिष्ट होते हैं तथा शक्तिवर्द्धक होते हैं।

तिल बुग्गा : इसमें भुने तिल की भुने खोये की चाशनी द्वारा पँजीरी जमा दी जाती है तथा उसे बर्फी की शक्ल में काट लेते हैं। कहीं-कहीं इसमें बादाम गिरी व काजू भी प्रचुर मात्रा में डालते हैं। इससे इसका स्वाद बढ़ जाता है।

अंदरसे : इसको बनाने के लिए चावल के आटे में पिसी चीनी मिलाकर गूँथ लिया जाता है तथा छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर घी में तला जाता है। गर्म-गर्म उतारकर तिल के साथ चलाने से उसकी बाहरी सतह पर तिल चिपक जाते हैं। यह काफी स्वादिष्ट होते हैं तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिनों में इनके खाने की प्रथा है।

गजक : इसको बनाने के चीनी अथवा गुड़ की चाशनी बनाई जाती है इसमें तिल मिलाकर पत्थर पर चिकनाई लगा कर इसे लकड़ी के बड़े-बड़े हथौड़ों से कूटा जाता है। जितनी ज्यादा कुटाई होती है गजक उतनी ही बढ़िया तथा खस्ता बनती है। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है।

रेवड़ी : इसमें चीनी व गुड़ की चाशनी बनाई जाती है तथा उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर चीनी के साथ चलाया जाता है प्रत्येक टुकड़ों पर तिल चिपक जाते हैं। अलग-अलग स्थानों पर इनके साइज़ अलग-अलग होते हैं। कहीं-कहीं ५ से.मी. व्यास के लोटे से बेल कर बनाई जाती है तथा कहीं-कहीं चने से भी छोटी होती हैं, कहीं-कहीं १० ग्राम भार की १-१ रेवड़ी होती है। कहीं-कहीं पर इनको बनाने में गर्म मसाले जैसे- जायफल, जावित्रि, तथा लौंग की बुकनी भी मिलाई जाती है जिससे इनका स्वाद एकदम अलग हो जाता है तथा खाने में बहुत स्वादिष्ट हो जाती हैं।

लिव-इन्स
वाल कवरिंगस

वॉल पेपर
दिवाल कागज़

खूबसूरत किफायती टिकाऊ

लगाने में आसान
न धूल न रंग के छींटे
न साफ सफाई की खटपट
काम हो इतने सस्ते में
और उतनी ही झटपट!

श्री विन्ध्या पेपर मिल्स लिमिटेड,
इण्डियन मर्केण्टाइल चेम्बर्स, तीसरा महला,
१४ आर. कमानी मार्ग,
बम्बई - ४०० ०३८.

अर्कादि धूम का महत्व

वैद्य श्री भानु प्रताप साहू

धूम्रपान विधि से आक (अर्क) के तने से बनी अर्कादि धूम दण्डिका द्वारा धूम्रपान किया जाता है। उस धूम का "अर्कादि धूम" नामकरण किया गया है। विशेषतः छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में जो परम्परागत वनौषधियों के द्वारा चिकित्सा करते हैं उनसे प्रभावित होकर इस धूम्रपान विधि का चयन किया गया। आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित धूम्रपान विधि के अन्तर्गत विरेचनिक धूम का विशेष महत्व है। शिरो विरेचन द्रव्यों में आक का वर्णन मिलता है।

अर्कादि धूम्र के गुण धर्म

जीर्ण एवं नवीन शिरःशूल, जीर्ण प्रतिश्याय (पुराना जुकाम) अत्याधिक छींक आना, अर्द्धविभेदक (आधा शीशी) शिरोभाग के वातजनित रोग आदि में भी यह धूम्रपान लाभकारी होता है।

धूम्रदण्डिका निर्माण विधि

हरे अर्क (कॅलोट्रोपिस प्रोसेरा) का तना, अदरक का स्वरस, सरसों का तेल।

आक के ७ से १० मि.मी. व्यास के कोमल तने के १५ से २० से.मी. लम्बे टुकड़े काट लेवें। बीच के गूदे व गाँठ को लोहे की शलाका से निकाल लेवें, जिससे काण्ड पोली नलिका बन जावे। उन्हें छाया में सुखा लेवें। नलिकाकार टुकड़े को शीशी या चौड़े मुख के मिट्टी के पात्र में रख कर अदरक का स्वरस इतना डालें कि सभी टुकड़े डूब जायँ। उसे ७ दिन तक भिगोकर रख देवें, स्वरस कम होने पर पुनः स्वरस डाल देवें। पश्चात् उन टुकड़ों को निकालकर स्वच्छ कर पुनः छाया में सुखा लेवें। अच्छी तरह सूख जाने पर ध्यान रखें कि छिद्र तो बन्द नहीं हुआ है। यदि छिद्र बन्द हो तो शलाका से साफ कर लेवें। सूखे टुकड़ों को ३ दिन तक सरसों के तेल में भिगोकर रखें, तेल से निकालकर स्वच्छ कर, जीवाणु रहित काँच की टेस्ट ट्यूब या बोतलों में सुरक्षित रख लेवें।

धूम्रपान विधि

अर्क धूम दण्डिका के एक सिरे को सिगार की भाँति जला कर नासिका पुट से धूम्रपान करें। धूम्रपान करते समय एक नासा पुट को अंगूठे से दबाकर दूसरे नासा पुट से धुएँ को खींचें, नासिका से ही धूम को निकालें। यह क्रिया ३ से ५ बार करें या आँखों से आँसू आने लगें, तब तक करें। आँसू आना ठीक से किए गए धूमपान का लक्षण है।

धूम्रपान काल

दिन में दो बार या तेज़ दर्द होने पर धूम्रपान करें। धूम्रपान से तत्काल (२ से ५ मिनट) में दर्द कम होने लगता है।

गुण-धर्म

अर्कादि धूम तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध एवं पिच्छिल होता है। तीक्ष्ण एवं उष्ण होने के कारण शिरोगत कफ को नाक से बाहर निकालता है। स्नेहयुक्त होने के कारण वायु का भी शमन करता है। मस्तिष्क में से संचित कफ के निकल जाने तथा दोष अपने स्थान से हट जाने से रोगी सुख का अनुभव करता है। सिर में हल्कापन होने से, इन्द्रियों की शुद्धि से, दोषों का शमन हो जाने से भी दर्द कम होने से प्रसन्नता का अनुभव होता है।

द्रव्य विवेचना

सरसों का तेल – तीक्ष्ण, उष्ण-वीर्य, स्निग्ध, पित्त प्रकोपक, कफ, वात-नाशक, शूलहर।

अदरक का रस – उष्ण वीर्य, कफघ्न, कफ वात नशक, वेदनाहर।

अर्क (आक) – कडुवा, उष्ण वीर्य, शोधन, वातहर, कफघ्न, श्वसन केन्द्र उत्तेजक, शिरो विरेचक।

दुष्प्रभाव

स्त्री-पुरुषों में यह समान रूप से गुणकारी पाया गया है। अर्कादि धूम का धूम्रपान विधि से प्रयोग करने पर कोई दुष्प्रभाव या प्रतिकूल लक्षण नहीं पाया गया।

निषेध : बालक, अतिवृद्ध, गर्भवती, पैत्रिक रोगों से पीड़ित रोगी, भ्रम, नेत्र रोग, रक्त पित्त, भयातुर आदि पर प्रयोग करना निषेध है।

अमरूद के पनीर

सुनीता शर्मा, लखनऊ

अमरूद दुनिया का एक बहुत ही नायाब फल है, और भारत भर में बहुतायत में उगाया जाता है। यहाँ इसी फल से पनीर बनाने की विधि दी जा रही है। होली पर ज़रूर आजमायें।

स्वस्थ, पूरी तरह पके हुए मगर सख्त, उम्दा किस्म के अमरूद लेकर पानी से खूब धोइये। फलों का दगीला हिस्सा निकाल दीजिये। छोटे-छोटे टुकड़े काट लीजिए। टुकड़ों की मात्रा के बराबर पानी में उबाल कर उन्हें गला लीजिए। महीन कपड़े से, टुकड़ों का गूदा छान लीजिए। इस तरह अमरूद के बीज और छिलके अलग हो जायेंगे।

गूदा	– १ कि.ग्रा.
चीनी	– १.५ कि.ग्रा.
मक्खन	– १२५ ग्रा.
साइट्रिक अम्ल	– २ ग्रा.
नमक	– १ चाय चम्मच भर
रंग	– लाल खाद्य रंग की उपयुक्त मात्रा

गूदा, शक्कर (चीनी), और मक्खन मिलाकर इतनी देर तक पकाइये कि मिश्रण गाढ़ा हो जाए। खूब गाढ़ा होने पर उसमें शेष चीजें थोड़े पानी में घोलकर मिला दीजिए।

चीनी मिट्टी की प्लेटों में मक्खन भली प्रकार से लगाकर मिश्रण फैला दीजिए। फैले हुए मिश्रण की तह लगभग ०.६ से.मी. होनी चाहिए। इसे ठण्डा होकर जमने के लिए रख दीजिए। आकर्षक आकारों में काट लीजिए। तैयार पनीर को बटर पेपर में लपेट कर काँच के बर्तनों में रख कर मोम से हवा बन्द सील लगा दीजिए।

महिलाओं के लिए

कुछ लाभकारी उपाय

मासिक धर्म कम आने में

१. काली इलायची के दाने और थोड़ी असली हींग लें और पानी में घोलकर पी जाएँ इसका कुछ और पानी पैर के तालू पर लगाएँ।

२. मासिक धर्म आने के चार-पाँच दिनों पूर्व अजवायन का प्रयोग थोड़ी-थोड़ी मात्रा में करें तो मासिक धर्म खुल कर आयेगा और पेट दर्द नहीं होगा।

अति रजस्राव में

अशोक की छाल का क्वाथ ८० ग्राम दिन में ३-४ बार लें। २५० ग्राम छाल को ४ लीटर जल में १/४ रह जाने तक पकाएँ, तत्पश्चात इस १/४ भाग को छानकर १ किलोग्राम चीनी के साथ पकाएँ। इस शर्बत की १० ग्राम मात्रा को जल के साथ दिन में ३-४ बार लें, तुरन्त लाभ होगा।

मासिक धर्म रुकता हो

१. सौंठ ५० ग्राम, गुड़ ३० ग्राम, वाय विडंग ५ ग्राम पीसकर २५० ग्राम पानी में औटाएँ। आधा कप काढ़ा तीन-तीन घण्टे बाद पियें।

२. सौंठ और गुड़ का हलुआ २०-३० ग्राम लें और दो घण्टे बाद मीठा दही २५० ग्राम खाएँ। चार-चार घण्टे बाद इस को २-३ बार दोहराएँ। शिकायत जाती रहेगी।

विशेष : महिलाओं के विशेष दिनों के लिए।

बंदगोभी

वैद्य रमेश म. नानल, बंबई

कहा जाता है कि बंद गोभी भारत को अंग्रेज़ों की देन है। परंतु चरक, सुश्रुत में इसका गोजिह्वा के नाम से उल्लेख है। इसे मराठी में गड्डा कोबी, पान कोबी, गुजराती में कंबोई, कन्नड़ में कोसु, बंगला में कोपी और अंग्रेज़ी में कैबेज तथा लैटिन में *ब्रैसिका ओलेरेसिया* कहते हैं। महाराष्ट्र में यह सब्ज़ी प्रायः वर्ष भर उपलब्ध रहती है। हरे-पीले, मोटे और कोमल पत्तों वाली भरी-भरी और भारी गोभी अच्छी समझी जाती है।

औषधीय प्रयोग

● रोजाना के कामकाज से थक जाना, पसीने-पसीने होना, दो-एक सीढ़ियाँ चढ़ते ही सीने में दर्द या उलझन या दम फूल आना ओर बैठने की इच्छा हो आना, मुँह सूख जाना और साथ ही जब तब पैरों में सूजन दिखना, चिड़चिड़ापन, क्रोध, भय, निराशा, चक्कर आना, सीने में जलन आदि लक्षणों के रहने पर और आराम करने से राहत महसूस होने पर निम्न प्रयोग (जो कि अनेक बार करके अचूक पाया गया है) अवश्य करें –

५० ग्राम बंद गोभी का टुकड़ा लेकर उसे भली-भाँति धो लें। उसके हर पत्ते को साफ कर लें। इन पत्तों में कीड़े और कीटनाशक दवाएँ लगी हो सकती हैं। अतः इन्हें साफ पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। फिर इस गोभी के टुकड़े को कुकर में बिना पानी के पका लें। फिर इसे साफ कपड़े में लेकर निचोड़ कर रस निकाल लें। इसमें एक चम्मच शहद और चौथाई चम्मच जीरा चूर्ण मिलाकर सूर्योदय के समय लें। अगले दिन बंद गोभी की मात्रा ५० ग्राम बढ़ाएँ। प्रतिदिन ५०-५० ग्राम बंद गोभी बढ़ाएँ, तब तक जब तक कि यह मात्रा ४०० ग्राम न हो जाय। फिर नित्य ४०० ग्राम बंद गोभी का रस निकाल कर लें और यह प्रयोग तीन माह तक करें। रस लेने के बाद एक घण्टे तक

कुछ न खाएं-पिएं। प्रयोग काल में खट्टे, चरपरे व्यंजन, अत्यधिक शारीरिक व मानसिक श्रम तथा अधिक मैथुन से बचें।

● अनुचित आहार, असमय भोजन, आये दिन उपवास करने की आदत, और अत्यधिक चिन्ता से यकृत की क्रिया बिगड़ जाती है। इसके फलस्वरुप पेट की शिकायतें शुरु होती हैं। पेट और सीने में जलन होती है, मुँह से पानी छूटता है, जीभ पर मैल जम जाता है, पतला और ढेर-सा गरम पाखाना होता है, हरारत, छाती में धड़कन और वज़न में कमी हो जाती है। ऐसे लक्षणों के होने पर बंद गोभी के आधा कप रस में एक चम्मच शहद और आधा चम्मच गाजर का रस मिलाकर रख लें और भोजन के समय बीच-बीच में जरा-जरा चुस्कियाँ लेते रहें। इससे यकृत और आँतों को शक्ति मिलती है और शिकायतें कम हो जाती हैं।

● जाड़े के दिनों में त्वचा रुखी होकर फट जाती है या खुजलाती है। ऐसी स्थिति में बंद गोभी के रस में धनिया का रस मिला त्वचा पर लेप करने से लाभ होता है।

● बार-बार पेशाब करने की इच्छा, पेशाब करते समय जलन और कमर में दर्द, तथा पेशाब पीला और कम मात्रा में होना, ऐसी स्थिति में एक गिलास बंद गोभी के रस में एक चम्मच धनिया चूर्ण और दो चम्मच मिश्री मिलाकर दो-तीन बार लेने से लाभ होता है।

● मसूड़ों से मवाद या रक्त आने पर मुँह में बंद गोभी का रस भरकर थोड़ी देर बैठे रहें और रस को मुँह के अंदर इधर-उधर चलाते रहें और बाद में थूक दें। इसके बाद मसूड़ों, गालों और दाँतों पर तिल का तेल मलें। खट्टे, तीखे और चरपरे पदार्थों का सेवन तथा पेट के बल लेटना बिल्कुल बंद करें।

निषेध : बंद गोभी की सब्ज़ी अधिक मात्रा में खाने से पेट में गैस बनती है। इसके निवारणार्थ सब्ज़ी पकाते समय उसमें हींग अवश्य डालें अथवा सब्ज़ी खाने के बाद अजवायन और सौंफ खायें।

वनौषधि संग्रह

वैद्य कृष्ण चन्द्र भूषण, बी.ए.,चण्डीगढ़

भंगरा, भांगरा या भृंगराज

प्रयोज्य अंग : सर्वांग

संग्रह तथा संरक्षण : मूल सहित सारे पौधे को उखाड़ कर एकत्रित कर लें। इसकी जड़ों को पानी से धो डालें ताकि मिट्टी आदि दूर हो जाय। फिर इसको छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें तथा छाया में शुष्क कर लें। पूर्ण रुप से सूख जाने पर बंद डिब्बों में सुरक्षित रख लें।

बिल्व (बेल)

प्रयोज्य अंग : फल (कच्चे भी और पक्के भी), मूलत्व, पत्ते, पके फल का ऊपरी भाग तथा पुष्प।

संग्रह तथा संरक्षण : इस ऋतु में केवल अपक्व सुकोमल फलों की मज्जा का संग्रह किया जाता है। अध पके फल, अथवा पके फल की मज्जा का संग्रह अन्य ऋतुओं में किया जाता है।

अपक्व सुकोमल फलों को वृक्ष से तोड़ कर उसके ४–५ टुकड़े कर ऊपरी सख्त भाग अलग कर मज्जा को कड़ी धूप में सुखा कर सुरक्षित रख लें।

कड़वी तोरी

प्रयोज्य अंग : फल, फल त्वक तथा सर्वांग

संग्रह तथा संरक्षण : इसकी लताओं को एकत्रित कर फल तथा कीट आदि से खराब पत्तों को अलग कर फेंक दें। शेष लता के छोटे–छोटे टुकड़े कर छाया शुष्क कर लें तथा सुरक्षित रख लें। फलों के चार–पाँच टुकड़े कर धूप में सुखा कर अलग से सुरक्षित रख लें।

कड़वा परवल

प्रयोज्य अंग : फल, पत्र, मूल तथा सर्वांग।

संग्रह तथा संरक्षण : इसकी समग्र लता को मूल सहित एकत्रित कर लें। फल तथा मूल को लता से अलग कर लें। चलते पानी में मूल को धोकर धूप में सुखा कर रख लें।

फल : इनके चार–पाँच टुकड़े कर कड़ी धूप में सुखा कर रख लें।

लता : शेष लता के छोटे–छोटे टुकड़े कर छाया में सुखा कर सुरक्षित रख लें।

लाजवन्ती – लज्जालू

प्रयोज्य अंग : मूल, पत्र तथा बीज।

संग्रह तथा संरक्षण : इसके मूल, पत्र तथा बीजों का अलग–अलग संग्रह कर लें। जड़ों को पानी से धोकर छोटे–छोटे टुकड़े कर सुखा लें। पत्र तथा बीजों को भी अलग–अलग सुखा लें, फिर तीनों को अलग–अलग सुरक्षित रख लें।

जंगी हरड़, बालहरड़, काली हरड़

प्रयोज्य अंग : केरी रूप बिल्कुल कच्ची हरड़, अर्धपक्व तथा पूर्ण पक्व हरड़।

संग्रह तथा संरक्षण : इस ऋतु में केवल केरी रुप बिल्कुल कच्ची हरड़ का संग्रह किया जाता है। अर्धपक्व तथा पूर्णपक्व अन्य ऋतुओं में एकत्रित की जाती हैं। इस ऋतु में बिल्कु कच्ची छोटी–छोटी हरड़ों को इकट्ठा कर कड़ी धूप में सुखा कर रख लें। यह ध्यान रहे कि केवल ऐसी छोटी हरड़ों का संग्रह करें जिनमें अभी गुठली भी न बनी हो।

विज्ञान पहेली : चार

प्रथम पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक तीन वर्ष तक।
द्वितीय पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक दो वर्ष तक।
तृतीय पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक एक वर्ष तक।

संकेत - बाँये से दाहिने

१. वर्षा ऋतु के बाद आने वाली ऋतु (३)
३. एक मेवा जो बहुत हल्का होता है (५)
६. श्वास संबंधी रोग (२)
८. औषधि जिससे मल बाहर निकाला जाता है (३)
९. आहार जो आसानी से पच जाय (३)
१०. कष्ट या ताप का कम होना (३)
१३. पेय (३)
१५. अतिविष (३)
१६. फूल के बाद की स्थिति (२)
१७. इन्द्रिय जिससे स्वाद ज्ञात होता है (३)
१९. मसाले में पड़ता है। चरपरा स्वाद होता है (४)
२१. आहार का सार लिये जाने पर शेष (२)
२२. पौधा जो घर-घर में लगाया जाता है (३)
२४. पेट से ख़राबी न निकलना (५)

संकेत - ऊपर से नीचे

२. लाल रंग की लकड़ी जो आँखो के लिए लाभप्रद है (५)
४. अपनी बू के लिए प्रसिद्ध मसालों में पड़ने वाली वस्तु (४)
५. ज्ञानेन्द्रिय (२)
७. तेल से शरीर की पालिश करना जाड़े में अत्यन्त लाभदायक है (३)
११. एक रस जो सभी को अच्छा लगता है (३)
१२. औषधि जिसको भूसी आँव के लिए लाभकारी है (५)
१३. ऐसी औषधि जो आहार को पचाती है (३)
१४. श्लेष्मा से उत्पन्न (३)
१५. फल जिसके दानों की उपमा दाँतों को दी जाती है (३)
१८. आँख में ..... लगाया जाता है (३)
१९. पेट की खराबी से होने वाला ऐसा रोग जिसमें सूजन आने से ..... में कष्ट होता है (२)
२०. जिसमें रस भरा हो (३)

कूपन भरकर भेजने का पता–
संपादक, जीवनीय विज्ञान पहेली,
ई-III/२५० सेक्टर एच, अलीगंज
लखनऊ – २२६०२०

नियम और प्रतिबन्ध

प्रतियोगिता में उम्र का कोई बंधन नहीं है। इसमें सभी स्त्री-पुरुष पाठक भाग ले सकते हैं।

यहां छपे कूपन को भरकर हल के साथ लगाकर भेजी गई पहेली ही स्वीकार की जाएगी।

एक नाम से एक ही पूर्ति भेजी जा सकती है।

सर्वशुद्ध हल न आने, और सभी प्राप्त हलों में दो से अधिक गलतियां होने पर, संपादक-मंडल को पुरस्कार प्रदान करने अथवा न करने का अधिकार होगा। संपादक मंडल का निर्णय हर स्थिति में मान्य होगा। किसी तरह की शिकायत संपादक-मंडल से ही की जा सकती है। **किसी भी तरह का कानूनी दावा किसी भी न्यायालय में नहीं दायर किया जा सकता।**

सर्वशुद्ध हल अनेक आने पर पुरस्कार प्रथम आगत, प्रथम स्वागत के आधार पर दिया जायेगा।

संकेतों के उत्तर जीवनीय के विगत अंकों में यत्र-तत्र द्रष्टव्य हैं।

संकेतों के समक्ष कोष्ठक में हल की अक्षर संख्या दी गयी है।

पूर्तियां २० मार्च, १९९१ तक स्वीकार की जाएगी।

कूपन

जीवनीय विज्ञान पहेली : चार

नाम _____

पता _____

अपने आंगन में

हेमंत - शिशिर में उपयोगी पौधे

श्री रोमैलो मालवीय, लखनऊ

हेमंत ऋतु में आप अपनी गृह-वाटिका में विभिन्न शाक-सब्ज़ी जैसे पालक, मूली, गोभी, शलजम, गाजर, टमाटर इत्यादि की उपज ले सकते हैं। साथ ही रंग-बिरंगे फूलों से भी शोभा बढ़ा सकते हैं। इस स्तम्भ में हम शुष्क स्थानों में सिंचाई की एक नवीन विधि का भी वर्णन कर रहे हैं। आशा है कि पाठकगण इससे लाभ उठायेंगे।

गुलाब

फूलों का राजा कहा जाने वाला यह पुष्प अपने सौंदर्य के लिए ही नहीं मशहूर है बल्कि यह एक महत्वपूर्ण औषधि भी है। गुलाब की करीब २५,००० प्रजातियाँ उपलब्ध हैं और आवश्यकतानुसार ही घर की वाटिका में प्रजाति का चुनाव करना आवश्यक है।

प्रजातियाँ

खुशबूदार : जादिस, मृणालिनी, हेडले, सुगंधा, एपिल टावर।

इत्र व गुलाबजल हेतु : एडवर्ड गुलाब, रोजा शर्बत, रोजा ज्योसेना।

गुलुकन्द हेतु : एडवर्ड गुलाब।

गमलों में लगाने हेतु : क्राई-क्राई, कोरोना, बेबीडार्लिंग, जूनियर मिस, समर स्नो, जारीना, जम्ब्रा।

कटे फूलों के लिए : सुपर स्टार, स्टार ऑफ इण्डिया।

रंगों के आधार पर : लाल - रक्तगन्धा, रेड चीफ। काला - कालिया, लालबहादुर, क्रिगजन ग्लोरी। गुलाबी - सदाबहार, सुचित्रा, सुरभि। पीला - पूर्णिया बसंत, गोल्डेन मास्टरपीस। ढोकलर - प्रेसिडेंट गिरी, डबल डिलाईट।

भूमि

गुलाब को किसी भी प्रकार की भूमि में लगा सकते हैं। परन्तु दोमट या मटियार भूमि जिसमें पानी की सही निकासी नहीं होती, गुलाब के लिए उत्तम नहीं है। मिट्टी के चुनाव में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि वहाँ पानी की निकासी सही हो।

गुलाबों के लिए १५ इंच से ३० इंच चौड़े गमले ही उपयुक्त होते हैं। गुलाब का पौधा या गमला उसी स्थान पर रोपित करें जहाँ दिनभर धूप रहती हो।

जलवायु

गुलाब की प्रजातियाँ समशीतोष्ण जलवायु से लेकर उष्ण जलवायु के स्थानों पर लगायी जा सकती हैं। इन्हें कोहरे व लू से बचाना चाहिए।

लगाने की विधि

गुलाब को कटिंग के द्वारा उगाते हैं। पेंसिल के बराबर मोटी स्वस्थ टहनियों को पहले नर्सरी में लगा लेते हैं। प्रत्येक कटिंग करीब ८-१० इंच लम्बी होती है और १/३ कटिंग भुरभुरी मिट्टी में अन्दर होनी चाहिए। मानसून में लगाई कटिंग ६ सप्ताह में तैयार हो जाती है। इस कटिंग पर "चश्मे चढ़ाने" की विधि द्वारा वांछित प्रजाति "बड" एक चीरे की मदद से लगा दी जाती है। "चश्मा चढ़ाने" का कार्य कुछ अनुभव के साथ सरलता पूर्वक किया जा सकता है। "बड" से अंकुरित शाखाएँ रोककर अन्य शाखाएँ छाँट दी जाती हैं और पौध रोपाई हेतु तैयार हो जाती है। गुलाब की कलम की रोपाई अक्टूबर से दिसम्बर तक की जाती है।

रोपाई : रोपाई के एक माह पहले गड्ढे खोदकर तैयार कर लें। गड्ढे १ मीटर व्यास व ७५ से.मी. गहरे खोदने चाहिएँ। दो पेड़ों के मध्य ७५ से.मी. की दूरी बनाये रक्खें। गड्ढों को मिट्टी व सड़ी हुई गोबर की खाद के बराबर-बराबर मिश्रण से भर दें। थोड़ी मात्रा में हड्डी का चूरा भी डाल दें।

सिंचाई : रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करें। जिस समय फूल आ रहे हों उस समय पानी लगातार देते रहें। १ वर्ष में १०-१२ सिंचाई काफी हैं। प्रत्येक सिंचाई के बाद खरपतवार निकाल दें व निराई-गुड़ाई कर दें।

खाद व उर्वरक : प्रत्येक वर्ष अक्टूबर माह में गुलाब के पौधे की चारों ओर से काट-छाँट कर दें। उसके बाद जड़ के पास से १५ से.मी. गहराई तक मिट्टी खोद कर एक ४५ से.मी. व्यास का घेरा बना दें। ३-४ दिनों के लिए जड़ें खुली रहने दें। फिर प्रत्येक पौधे को ४-५ किलो सड़ी गोबर की खाद द्वारा दबा-दबा कर भर दें। गोबर की खाद देने के एक सप्ताह बाद नित्य खाद का मिश्रण तने से हटाकर मिट्टी में मिला दें।

नीम की खली - २०० ग्राम, यूरिया - २० ग्राम, हड्डी का चूरा - १०० ग्राम, सुपर फॉस्फेट - ५० ग्राम, म्यूरेट ऑफ पोटाश -

३० ग्राम।

खाद सावधानी पूर्वक लगाकर पानी दें। इससे उच्चकोटि के पुष्प प्राप्त होंगे।

घड़ा सिंचाई प्रणाली : यदि आपके घर में या आस-पास की ज़मीन शुष्क अथवा अर्धशुष्क है अथवा सिंचाई जल में लवण की मात्रा अधिक है तो इस नई घड़ा सिंचाई प्रणाली को अपना सकते हैं।

तुरई, लौकी, कद्दू व अन्य इस प्रकार की शाक-सब्ज़ी जो एक जड़ के माध्यम से फैलती है, के लिए भी यह प्रणाली उत्तम है।

सिद्धांत : साधारण घड़ों को ज़मीन में गड्ढा खोदकर गर्दन तक गाड़ देते हैं। इन घड़ों में पानी भर दिया जाता है, जो घड़े की दीवार के सूक्ष्म छिद्रों से रिसकर बाहर आने लगता है। रिसा हुआ पानी आस-पास के क्षेत्र को नम रखता है। साथ ही पानी की लवणता भी बाहर निकलने पर कम हो जाती है। एक घड़े के चारों तरफ केवल चार पेड़ ही लगाएँ।

प्रयोग विधि : उपयुक्त स्थान पर १ मीटर व्यास व १/२ मीटर गहराई का गड्ढा खोद लें। निकली मिट्टी में बराबर मात्रा में गोबर की सड़ी खाद मिला लें। अब साधारण घड़े को इस गड्ढे में इस प्रकार रक्खें कि उसका मुँह सतह से ऊपर रहे। शेष गड्ढे को मिट्टी-गोबर खाद के मिश्रण से भर दें। घड़े के चारों ओर एक बीते के फासले पर आठ बीज बोएँ अथवा पौधा रोपित करें। बीज उगने की दशा में चार स्वस्थ पौधे छोड़कर शेष उखाड़ दें। लता बढ़ने पर उसे चारों दिशाओं में फैला दें। पानी घड़े में दूसरे-तीसरे दिन भर दें। नाइट्रोजन पूर्ति के लिए बुआई के ३० व ५० दिन के अन्तराल पर ५ ग्राम यूरिया घड़े के पानी में ही घोल दें।

उपयोगिता : शुष्क क्षेत्रों में पानी की बचत का यह सर्वश्रेष्ठ प्रयोग है। इसमे सतही सिंचाई के मुकाबले १/५ हिस्से के बराबर पानी लगता है। प्रयोगों से यह भी पता चला है कि अधिक लवणता वाले पानी (.४ डी.एस./मी.) को घड़े में यदि भरा जाय तब भी फसल उतनी ही अच्छी होती है जितनी कि नलकूप के पानी (०.४डी.एस./मी.) से होती है।

आप भी इस प्रणाली को अपनाएँ और अधिक उपज प्राप्त करें।

आँवले की खेती

आँवले को उगाने के सम्बन्ध में हम जीवनीय के पुराने अंक में विस्तार से लिख चुके हैं (देखें जीवनीय अंक) हमारे कुछ पाठकों ने आँवले की विभिन्न प्रजातियों के सम्बन्ध में जानकारी चाही है। जो हम इस स्तम्भ के माध्यम से सभी के लाभ के लिए दे रहे हैं।

क्या आँवला ऊसर भूमि में उग सकता है ?

वैज्ञानिक तथ्यों से पता चला है कि आँवला बंजर भूमि में बहुत सफलता से उगाया जा सकता है। जिसका पी.एच. मात्र ९.५ व सोडियम प्रतिशत ३०% तक हो, परन्तु ऐसे स्थानों में पानी की निकासी रहनी चाहिए। इससे जहाँ एक ओर बेकार पड़ी बंजर भूमि का उपयोग होगा वहीं अत्यन्त लाभकारी वनौषधि वृक्ष का बाग भी लगाया जा सकता है।

आँवले की प्रमुख किस्में व उनके गुण-

बनारसी : यह आँवले की पुरानी किस्म है। फल औसत से बड़े होते हैं। फलों का रंग हल्का हरा और बाद में गहरे हरे रंग का हो जाता है। गूदे में रेशे नगण्य होते हैं।

चकैया : यह अधिक उपज देने वाली और देर से पकने वाली किस्म है। फल छोटा, हरा व हल्का धारीदार होता है। फलों में रेशे की मात्रा अधिक होती है। पेड़ सीधा ऊपर जाता है।

फ्रान्सिस : यह भी अधिक उपज देने वाली किस्म है। पेड़ की शाखाएँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। इस कारण इसे "हाथी-झूल" भी कहते हैं। फलों का रंग पकने पर पीला होता है। गूदे में रेशे की मात्रा कम होती है। फल छोटे से मध्यम आकार के होते हैं।

कृष्णा : यह अधिक उपज देने वाली अगेती किस्म है। फल छोटे और मध्यम आकार के होते हैं। गूदे में रेशे की मात्रा कम होती है।

वंध्यन : इस किस्म का फैलाव अधिक होता है। फल छोटे और मध्यम आकार के होते हैं। गूदे में रेशे की मात्रा अधिक होती है।

अगले अंक में

आँवलों में अफलन कैसे रोकें

सूचना

इस बार विज्ञान पहेली के जितने भी हल आये उनमें से कोई भी सर्वशुद्ध या एक अशुद्धि वाला नहीं था अतः निर्णायक मण्डल ने इस बार किसी भी प्रविष्टि को पुरस्कार न देने का निर्णय लिया है। आशा है पाठक अगली बार और अधिक प्रयास करके समय रहते हल भेजेंगे।

संपादक

पत्र-पत्रिकाओं से

कैलारी-पुराण

"कैलोरी" शब्द का इस्तेमाल प्रायः आहार सम्बन्धी चर्चा में होता है। आमतौर पर कैलोरी शब्द को खाद्य-पदार्थ की वज़न बढ़ाने वाली क्षमता के साथ जोड़कर देखा जाता है। दूसरे शब्दों में "कैलारी" ऊर्जा को मापने का एक पैमाना है। शरीर की विभिन्न क्रियाओं के संचालन हेतु हमें ऊर्जा की जरुरत पड़ती है। यह ऊर्जा हमें भोजन तथा अन्य पदार्थों से प्राप्त होती है। खाद्य-पदार्थों से हमें जो (ऊर्जा) कैलोरीज़ प्राप्त हाती है, उन्हें हमारा शरीर जीवन रक्षा, क्रियाशीलता तथा पाचन-तंत्र को सक्रिय बनाये रखने में व्यय करता है। शरीर विज्ञानियों के अनुसार प्रतिदिन प्राप्त कैलोरी का ६५ प्रतिशत भाग इस कार्य में खर्च होता है। महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कम कैलोरीज़ की जरुरत पड़ती है।

जीवन-रक्षा के महत्वपूर्ण कार्य के बाद कैलोरीज़ दैनिक कार्यशीलता में खर्च होती है। एक चुपचाप बैठे रहने वाले व्यक्ति को अधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा कम कैलोरीज़ खर्च करनी पड़ती है।

एक व्यक्ति को प्रतिदिन कितनी कैलोरी की आवश्यकता होती है? इस प्रश्न का कोई एक सर्वमान्य उत्तर नहीं दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक सामान्य व्यक्ति को २६०० कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है लेकिन एक मजदूर को चार हजार कैलोरी प्रतिदिन जरुरी तौर पर चाहिए।

भोजन द्वारा प्रतिदिन ग्रहण की जाने वाली कैलोरी प्रतिदिन खर्च होने वाली कैलोरी के बराबर होनी चाहिए। अपने स्वास्थ्य, कार्य के स्वरुप, आयु तथा परिस्थितियों को देखकर भोजन में कैलोरी की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

शल्य चिकित्सा और ऐलोपैथी को आयुर्वेद में पुनर्जीवित करने का एक प्रयत्न

बंगलूर विश्वविद्यालय की शैक्षिक समिति ने यह प्रस्ताव रखा है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा के छात्रों के लिए शल्य चिकित्सा और ऐलोपैथी में एक लघु अवधि का शिक्षण कार्यक्रम अलग नामकोश से शुरु करना चाहिए। लेकिन वहाँ पर उपस्थित सदस्यों ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि आकस्मिक संकट में आये हुए मरीजों के इलाज के लिए अल्प अवधि के कार्यक्रम पर्याप्त नहीं हैं। इस प्रस्ताव का विरोध करने वालों में मुख्य रुप से डॉ. अमृत राज और डॉ. अन्नथा थे। प्रोफेसर राजन और प्रोफेसर राधाकृष्णन और थिमय्या ने आयुर्वेद के छात्रों के लिए आकस्मिक चिकित्सा शिक्षण शुरू करने के विषय में कोई विरोध नहीं किया।

ज्वार के उपयोग

ज्वार के दाने पर जो भूसी का छिलका होता है वह विटामिन बी-कांप्लेक्स, सेलुलोज़ और फाइटेटों का एक समृद्ध स्रोत है। ज्वार का आटा एक उत्तम पोषाहार है। ज्वार की रोटी यदि चबा-चबा कर खायी जाये तो कब्ज़ की शिकायत रह नहीं सकती। यदि चबाने में कसर रह जाये तो अलबत्ता अपच के होने का खतरा रहता है।

ज्वार में लोहे की मात्रा बहुत है अतः इसके सेवन से रक्त स्वस्थ हो जाता है। ज्वार का सेवन खून की कमी की रोकथाम भी करता है, उसका इलाज तो यह है ही।

खूनी बवासीर में पालिश किये हुए ज्वार का दलिया दूध या मट्ठे के साथ लेने से लाभ होता है।

ज्वार के पौधों की पत्तियों पर पड़ी ओस, आंख के फूले, मोतियाबिंद और तीव्र धूप के कारण आंखों की जलन और अश्रुस्राव की औषधि है।

मधु संचय

गुण, गुण और गुण यानि एक अदद पत्ती तुलसी की

हमारे यहाँ प्राचीन काल से तुलसी को पवित्रता का प्रतीक माना जाता है क्योंकि इसे भगवान का प्रसाद या चरणामृत के रुप में लिया जाता है। लोग घरों में तुलसी का पौधा लगाकर उसकी पूजा करते हैं। यह मनुष्यों के दोषों का नाश करती है। आयुर्वेद व चरक–संहिता में तुलसी के बहुत गुण बताये गये हैं।

हमारे पुराण इसे "मंजरी" नाम से वर्षों से जानते हैं। यह सुगन्धित बूटियों व लघु झाड़ियों का वंश है और पृथ्वी के उष्ण कटिबन्धों और गर्म शीतोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। "लेबियेटी" वंश की तुलसी की बहुत सी जातियों से वाष्पशील तेल मिलते हैं जो चिकित्सा और गंध उद्योग में प्रयोग किये जाते हैं, कुछ में से प्रचुर मात्रा में कपूर मिलता है।

पूजी जाने वाली व "तुलसी माँ" सिर्फ प्रसाद के रुप में ही नहीं ली जाती, बल्कि बच्चे, स्त्री और पुरुष रोगों में इसे औषधि के रुप में प्रयोग करते हैं। छोटे बच्चों को सर्दी, जुकाम व खाँसी हो जाए तो तुलसी के पत्तों का रस, अदरक का रस व शहद मिलाकर आधा–आधा चम्मच दिन में २–३ बार दिया जाता है। बच्चों के दाँत निकलने और दस्त आने पर इसका रस अनार के साथ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त तुलसी के पत्तों का चूर्ण फिटकरी के साथ चोट या घाव पर लगा सकते हैं, शरीर के जले हिस्से पर नारियल का तेल मिलाकर लगाना, नाक के अंदर हुई फुंसी में तुलसी के सूखे पत्तों का चूर्ण सूँघना, तुलसी और आँवले को पानी में भिगोकर सिर धोकर बालों का झड़ना और असमय सफेद होना रोका जा सकता है। तुलसी के सूखे पत्तों के चूर्ण से दस्तों में लाभ, रस से जोड़ों के दर्द में राहत, पत्तों का पानी नित्य लेने से मस्तिष्क की दुर्बलता दूर होती है। तुलसी के पत्तों का रस तिल्ली के तेल में पकाकर लगाना हर प्रकार के चर्म रोग में लाभकारी है।

नीम पर आधारित कीटाणुनाशक बाज़ार में

अब नीम से बने कीटाणु नाशक का उपयोग रासायनिक कीटाणुनाशक के स्थान पर वृक्षों के संरक्षण कारक के रुप में हो सकता है।

दो औद्योगिक संस्थाओं ने नीम सत्व को किस प्रकार से विभिन्न मात्रा में प्रयोग करके पीड़क जन्तु का धीरे–धीरे नाश किया जा सकता है इस सम्बन्ध में किसानों को शिक्षित करने के लिए विस्तृत रुप में जानकारी दी है। इसके निर्माता विकसित हो रहे देशों में यह तकनीकि निर्यात करना चाहते हैं।

इन दिनों पीड़क नाशक का परीक्षण सोवियत संघ और पश्चिम के देशों में चल रहा है कि उनकी जीव क्षमता कितनी है। इसके विषय में यह भी कहा जा सकता है कि यह सुरक्षित जड़ी बूटी उत्पादन है और कीटाणु प्रतिरोधक प्रवृत की समस्या से दूर है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की की एक शोध संस्था ने इसको १२८ फसलों के कीट जाति पर प्रभावकारी देखा है। तीन प्रकार के नीम सत्व बाज़ार में आ गये हैं जैसे कि पानी में मिला हुआ सार, कणिका सूत्रीकरण और आर्द चूर्ण। आर्द चूर्ण तो मलेरिया की रोकथाम के लिए मच्छरों का विकर्ष बताया गया है।

स्वस्थ एवं निरोगी जीवन के लिए

लोक स्वास्थ की द्वैमासिक पत्रिका

जीवनीय

के नियमित पाठक बनें

ई – III / २५०, सेक्टर एच, अलीगंज

लखनऊ – २२६ ०२०.

मस्तरामजी

2.

कथा : पं० काशीनाथ गोरे
चित्र : सन्दीप सेन

" रात मे अधिक जागना"
वर्षा या शरद ऋतु मे हिम मे सोना ..
" धूल या धुएं से भरे वातावरण मे रहना "
गर्म वातावरण से ठंडे या ठंडे वातावरण से गर्मी में आना ..
" जुकाम के रोगी से संपर्क .."
.. अग्निमंद होने से प्राय: जुकाम हो जाता है ..
.. कुछ लोग किसी विशेष गंध या वस्तु के प्रति संवेदन-शील होते है ..
" अगरबत्ती, सेंट आदि की खुशबू .."
"भीड़भाड़मे अधिक देर तक या घुटन भरे वातावरण मे रहना .."
कोई ठंडी वस्तु जैसे मूली आदि खाने से कुछ व्यक्तियोंको जुकाम हो जाता है
ICE CREAM
.. मगर इससे बचने के उपाय क्या है ?

क्रमश:

★ गैस और बदहजमी ★ जोड़ों का दर्द ★ पुरानी खांसी और जुकाम
★ बढ़े हुए कोलेस्ट्रोल से प्राकृतिक राहत के लिए

लहसुन के गुणों का शुद्धतम सार

गन्धरहित!

लहसुन। इसके औषधि तत्व प्राचीन आयुर्वेद से लेकर आधुनिक औषधि विज्ञान तक में मान्य हैं। वे तत्व जो कि गैस और बदहजमी दूर करने में सहायक हैं, जोड़ों के दर्द से छुटकारा दिलाने में मदद करते हैं, बार-बार होने वाली खांसी और जुकाम से मुक्ति दिलाने का काम करते हैं और कोलेस्ट्रोल के बढ़ने पर उसका स्तर कम करते हैं।

ये तत्व, यदि लहसुन पकाया जाए, समाप्त हो जाते हैं। या फिर कच्चा सेवन करें तो तेज गन्ध से परेशानी हो सकती है।

रैनबैक्सी की लहसुन की गोलियां अर्थात् गार्लिक पर्ल्स में कच्चे लहसुन का शुद्धतम सार खींचकर उसे गन्ध विहीन कर दिया जाता है और उसके औषधि तत्वों को आसानी-से-सेवन करने योग्य कैप्सूलों में बंद कर दिया जाता है। रैनबैक्सी की गार्लिक पर्ल्स लीजिए और उसके सभी गुणों से लाभ उठाइये – प्राकृतिक तरीके से।

रैनबैक्सी के गार्लिक पर्ल्स

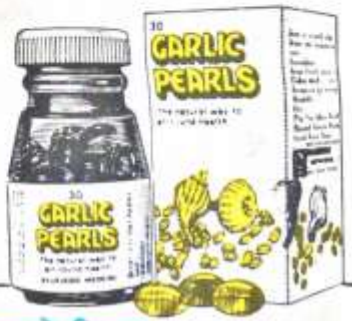

दिन प्रतिदिन प्राकृतिक राहत के लिए